Chapter-6

षष्ठ अध्याय

" वर्मा जी के उपन्यासों में कथोपकथन "

कथोपकथन की परिभाषा :- साहित्य में पात्रों के पारस्परिक वार्तालाप को कथोपकथन अथवा संवाद नामक संज्ञा से अभिहित किया गया है। एक पाश्चात्य विद्वान ने कथोपकथन की परिभाषा करते हुए लिखा है -

"Composition which produces the impact of human talk as nearly as possible the impact of conversation over heard".[1]

कथोपकथन का महत्व एवं उद्देश्य :- जिस प्रकार मनुष्य को वाणी का वरदान देकर ईश्वर ने उसे परस्पर निकट आने का अवसर प्रदान किया है, उसी प्रकार साहित्य में कथोपकथन की स्थिति अत्यधिक महत्वपूर्ण है। नाटक में तो कथोपकथन का महत्व सर्वोपरि है ही, उपन्यास में भी उसे आवश्यक तत्व के रूप में स्वीकार किया गया है। उपन्यास के सभी मीमांसकों ने इसके असंदिग्ध महत्व के सम्बंध में अपने विचार प्रस्तुत किये हैं। अंग्रेजी साहित्य के एक मनीषी विद्वान की धारणा है कि सुव्यवस्थित कथोपकथन उपन्यास का सर्वाधिक भास्वर तत्व है, जिसके द्वारा लोगों से (पाठकों से) सर्वाधिक आत्मीयता स्थापित की जा सकती है तथा जिसके द्वारा कथानक में विविधता एवं स्वाभाविकता लायी जा सकती है।[2]

कथोपकथन के समुचित प्रयोग के द्वारा उपन्यास में रोचकता, सरसता एवं मनोरंजकता की अभिवृद्धि होती है। जिस उपन्यास में शुष्क विवरण की जितनी ही न्यूनता और वार्ता की जितनी ही अधिकता रहती है वह उतना ही अधिक आकर्षक और मनोरंजक होता है। इसका एकमात्र कारण यही है कि वार्तालाप मानव-जीवन की बहुत बड़ी आवश्यकता है और बातचीत से मनुष्य कभी थकता नहीं, यदि वह निरर्थक एवं नीरस न हो। इसी तथ्य को दृष्टि में रखकर पाठक को किसी उपन्यास को पढ़ने के पूर्व उसके पृष्ठ पलटते समय संवाद के अनुपात को अधिक महत्व देते हुए देखा जाता है।[3]

---

1. "Talks on writing of English-"Arlobates, series2, Page-230.
2. Dialogue, well managed, is one of the most delightful elements of a novel; it is that part of it in which we seem to get most intimately into touch with people, and in which the written narrative most nearby approaches the vividness and actuality of the acted drama. The expansion of this element in modern fiction is, therefore, a fact of great significance."
   An Introduction to the Study of Literature
   W.H.Hudson.Page 154
3. "Any one who watches an uncritical reader running over the pages of a novel for the purpose of judging in advance whether or not it will be to his taste, will notice that the proportion of dialogue to compact chronicle and description is almost always on important factor in the decision."
   _'An Introduction to the Study of Literature'Page-154.

उ

उपन्यासों में अनेक पात्रों की कल्पना करने पर उनके परस्पर सम्बंध एवं वार्तालाप की ओर ध्यान जाना अनिवार्य हो जाता है। पात्रों की बातचीत के द्वारा ही हम उनसे भलीभाँति परिचित होते हैं। उनके विचार, संकल्प-विकल्प, अभिरुचि और प्रतिक्रियाएँ उनके कथन-उपकथन के माध्यम से ही व्यंजित होती हैं और संवादों में व्यक्त मनोभावों, प्रवृत्तियों एवं अभिलाषाओं से प्रेरित गतिविधियों के आधार पर कथा का विकास होता है, उसमें गतिशीलता आती है। इसीलिए कहा गया है कि 'घटनाओं को प्रगतिशील बनाना तथा पात्रों के शील-स्वभाव पर पूरा-पूरा प्रकाश डालना ही कथोपकथन का मुख्य उद्देश्य होता है।'[1] इन दो उद्देश्यों के अतिरिक्त कथोपकथन का समावेश अन्य अनेक उद्देश्यों से किया जाता है। मुख्य रूप से कथोपकथन के उद्देश्य निम्नलिखित माने गये हैं :-

1- कथानक को गति प्रदान करना।

2- पात्रों के चरित्र का विश्लेषण करना।

3- कथाकार के उद्देश्य को स्पष्ट करना।

4- कथोपकथन के व्याज से पूर्व- संकेत देना।

5- कथोपकथन के माध्यम से वातावरण -सृष्टि करना।

वर्मा जी के उपन्यासों में इन सभी उद्देश्यों को दृष्टि में रखकर कथोपकथनों की अवतारणा की गयी है। वर्मा जी उपन्यासकार के अतिरिक्त नाटककार के रूप में अत्यधिक प्रख्यात रहे हैं, अत: उन्होंने अपने उपन्यासों में भी नाटक की भाँति कथोपकथन का अधिकाधिक प्रयो प्रयोग किया है और इन संवादों के माध्यम से उपर्युक्त विभिन्न उद्देश्यों की पूर्ति स्वत: हो गयी है।

वर्मा जी के उपन्यासों में कथानक को गति प्रदान करनेवाले कथोपकथन

उपन्यास के विस्तृत कथानक में कई ऐसे कथासूत्र रहते हैं जिनका कथानक से कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध तो नहीं होता, किन्तु अप्रत्यक्ष रूप से कथा के विकास में उनका महत्वपूर्ण स्थान होता है। ऐसी असम्बद्ध घटनाओं को सीधे प्रस्तुत कर देने में उपन्यास की स्वाभाविकता एवं कलात्मकता नष्ट होने का भय बना रहता है अत: कुशल उपन्यासकार कथा में नवीन मोड़ लाने के लिए पात्रों के युक्तिपूर्ण संवाद का आश्रय ग्रहण करते हैं, इस प्रकार प्रत्यक्षरूप से

1- प्रेमचन्द की उपन्यास-कला - प्रो० जनार्दन प्रसाद झा 'द्विज' पृ० 79

असम्बद्ध घटना- पात्रों के वार्तालाप के माध्यम से प्रकाशित होकर मुख्य कथा के विकास में सहायक सिद्ध होती है। किन्तु इस प्रसंग में स्मरणीय है कि कथोपकथन का कथासूत्र से पूर्ण-रूपेण सम्बद्ध होना अनिवार्य है अन्यथा कथा की श्रृंखला नष्ट हो जायगी और कथोपकथन में अनावश्यक एवं अपे अनपेक्षित व अरोचक बातों के समावेश से कथा का अभीष्ट प्रवाह अवरुद्ध हो जायगा। वर्मा जी ने कथोपकथन की अवतारणा करते समय इन बातों का प्रायः ध्यान रखा है। उन्होंने बड़ी कुशलता से पात्रों के वार्तालाप के माध्यम से कथा के नवीन मोड़ को प्रकाशित कर दिया है और उसे पिछली कथा से असम्बद्ध भी नहीं होने दिया है। 'चित्रलेखा' के एक उद्धरण से हम अपनी बात स्पष्ट करना चाहेंगे। 'चित्रलेखा'- सम्राट चन्द्रगुप्त की सभा में योगी कुमारगिरि को परास्त कर देती है, किन्तु उसके व्यक्तित्व से प्रभावित होकर विजय-मुकुट कुमारगिरि को अर्पित कर देती है। इस घटना के सम्बंध में वार्तालाप करते हुए बीजगुप्त कथानक के नवीन मोड़ की सूचना दे देता है और इस वार्तालाप से पुष्ट होकर कथा आगे बढ़ती जाती है। देखिए -

"श्वेतांक।"

"स्वामी।"

"बतला सकते हो तुमने आज क्या देखा।"

"हाँ। आज योगी कुमारगिरि को स्वामिनी ने पराजित किया है। मुझे कितना हर्ष।"

"तुम्हें हर्ष है।" बीजगुप्त हँस पड़ा ; पर उसकी हँसी रूखी थी- "तुम्हें हर्ष है कि चित्रलेखा ने कुमारगिरि को पराजित किया, पर श्वेतांक, मुझे दुःख है। तुम शायद मेरी बात पर आश्चर्य करोगे ; पर बात ठीक है। तुम हँस सकते हो, मैं भी शायद हँस सकता हूँ ; पर मेरी आत्मा रोती है।"

श्वेतांक ने आश्चर्य से पूछा -" मैं स्वामी का तात्पर्य नहीं समझ सका।

नहीं समझ सके ? और तुम समझ भी किस प्रकार सकते हो। तुमने अभी संसार नहीं देखा है, तुम अनुभव से रिक्त हो। जिसे तुम चित्रलेखा की विजय समझते हो, वह उसकी बहुत बड़ी पराजय है। चित्रलेखा और कुमारगिरि। कोई भी विजयी नहीं है, दोनों ही पराजित हुए हैं। परिस्थिति का चक्र तेजी के साथ घूम रहा है, उसी के फेर में ये दोनों प्राणी फँस गये हैं।"[1]

1- चित्रलेखा- पृ० 52

इसके आगे भी यह वार्तालाप थोड़ी देर चलता है और उससे स्पष्ट हो जाता है कि बीजगुप्त और चित्रलेखा के प्रेमपूर्ण जीवन में कोई नवीन स्थिति आनेवाली है। बीजगुप्त के दो वाक्य 'मेरी आत्मा रोती है' तथा 'परिस्थिति का चक्र तेजी के साथ घूम रहा है, उसी के फेरे में ये दोनों प्राणी फँस गये हैं' इस बात का स्पष्ट संकेत कर दे देते हैं कि चित्रलेखा बीजगुप्त के जीवन से दूर हो रही है तथा कुमारगिरि और चित्रलेखा नवीन परिस्थिति-चक्र में फँस रहे हैं। यहाँ यह उल्लेख कर देना भी आवश्यक प्रतीत होता है कि उपर्युक्त कथोपकथन के अंत में बीजगुप्त श्वेतांक को चित्रलेखा के भवन में जाकर उसके मुखांकित भावों का अध्ययन करने का आदेश देता है। श्वेतांक चित्रलेखा को विजय के लिए बधाई देने के बहाने उसके भवन पर जाता है और वहाँ चित्रलेखा कुमारगिरि के प्रति अपने आकर्षण का भेद श्वेतांक को बतला देती है। इस प्रकार कथा विकसित भी होती है और उसमें एक श्रृंखला भी बनी रहती है।

'सबहिं नचावत राम गोसाईं' से भी एक उद्धरण द्रष्टव्य है जिसमें उपन्यासकार ने कथोपकथन के माध्यम से पिछली घटनाओं की कड़ी में नवीन घटना का संकेत करते हुए कथानक को चरम सीमा की ओर अग्रसर किया है। उपन्यास की सर्वाधिक रोचक घटना की भूमिका दो मित्रों के संवाद में बाँधी गयी है -

'यही वक्त था तुम्हें यहाँ आने का। अच्छी खासी नींद आ रही थी - बियर की तीन बोतलें पी लीं। और फिर जाना है ट्रैक्टर फैक्टरी के शिलान्यास में साढ़े चार बजे- खैर बैठो।'

रामलोचन बैठ गया, 'तो बड़ा शानदार लंच था। कोई खास बात हुई वहाँ?

'खास बात क्या होती - मिनिस्टर कोई था नहीं जो ऊटपटाँग बकता या लड़ता-झगड़ता। हाँ सेठ राधेश्याम को जरूर पार्टी के बीच में ही दिल-धड़का हो गया और वह चला गया।'

रामलोचन ने मुसकराते हुए वारंट अपनी जेब से निकाला, 'उसका दिल-धड़का यह रहा मेरे पास। बाल-बाल बच गया।' और रामलोचन ने जैकृष्ण को सारी बात बताई।

जैकृष्ण की खुमारी तत्काल जाती रही, वह उठकर बैठ गया, 'यह क्या गज़ब कर डाला तुमने? अब तुम्हारी खैर नहीं है समझो।'

'वह तो समझे ही हुए हूँ। हम दोनों काफी देर तक होम मिनिस्टर के घर पर रहे, वह रहा होम मिनिस्टर के पास और मैं बुआ जी के पास। तो मैं तो वापस चला आया। मेरा ऐसा ख्याल है उसने मुकदमा वापस करा लिया होगा और वारंट भी कैंसिल

करा लिया होगा ।" और रामलोचन के होंठों पर एक विद्रूपात्मक हँसी आई, "लेकिन मैं उस वक्त से थाने पर पहुँचा नहीं, और न अभी वहाँ पहुँचने का इरादा है । यह वारंट तो मेरे पास सही-सलामत मौजूद है - इसका कैंसीलेशन आर्डर अभी तक मुझे मिला ही नहीं है ।"

जैकृष्ण के माथे पर बल पड़ गए, " तो क्या तुम उसे गिरफ्तार करने पर तुले हुए हो ?"

रामलोचन ने गले के बाहर अपना जनेऊ निकाला," इस जनेऊ की कसम खाई थी मैंने तुम्हारे यहाँ । गो कि उस दिन मैं पिये हुए था । लेकिन मैं ब्राह्मण हूँ असली पंक्तिपावन सरवरिया ब्राह्मण । अगर सपने में भी जनेऊ की कसम खाई होती तो उसे भी मैं पूरी करता।

जैकृष्ण बोला," रामलोचन - वह दो-एक दिन तो तुम्हारी गिरफ्त में आएगा नहीं, और कल-परसों तक तुम्हारा बुरिया-बसना यहाँ से उठा समझो ।"

रामलोचन मुसकराया," मैं भी इस साली पुलिस की नौकरी से आजिज आ गया हूँ - खासतौर से इस लखनऊ वाली नौकरी से । अजीब गुलामी करनी पड़ रही है । तो इसकी फिक्र मत करो । अच्छा यह बतलाओ उस शाम वाले शिलान्यास -समारोह में तुम जा रहे हो ?"

"जाना तो चाहिए था, लेकिन वहाँ न जाने से कोई हर्ज़ नहीं होगा । तुम्हारा मतलब क्या है ?"

"मतलब यह है कि अपनी कार निकालो, और कुछ देर के लिए मेरे ड्राइवर बन जाओ । तुम्हें कुछ नहीं करना, करना-धरना तो मुझे है । हाँ, अपना कैमरा साथ लेते चलो । ठीक साढ़े चार बजे चल देना है यहाँ से ।"

जैकृष्ण ने रामलोचन का कार्यक्रम जानने का कितना ही प्रयत्न किया लेकिन रामलोचन ने बार-बार यही कहा,"बस देखते चलो - बड़े-बड़े तमाशे देखे होंगे - एक तमाशा और ।"[1]

प्रस्तुत उद्धरण में स्पष्ट देखा जा सकता है कि कथा में त्वरा एवं वेग लाने के लिए वर्मा जी ने कितने रोचक एवं महत्वपूर्ण कथोपकथन की अवतारणा की है । उनके उपन्यासों में इस प्रकार के अनेकानेक स्थल देखेजा सकते हैं ।

1- सबहिं नचावत राम गोसाईं - पृष्ठ-251-52

:: पात्रों के चरित्र का विश्लेषण करनेवाले कथोपकथन ::

उपन्यास में कथोपकथनों के द्वारा गतिशीलता मिलती है तथा कथोपकथन कथानक से किसी न किसी रूप में संबद्ध भी रहते हैं तथापि उनका सीधा सम्बन्ध तो उपन्यास के पात्रों से रहता है अतः चरित्रों का शील-प्रकाशन करना इनका प्रमुख कर्तव्य होता है। यों तो पात्रों के वार्तालाप किसी सिद्धान्त या परिस्थिति पर प्रकाश डालने के लिए भी रखे जा सकते हैं, किन्तु जहाँ कथोपकथन के द्वारा पात्रों के व्यक्तिगत राग-द्वेष, विचार, सुख-दुख, मानसिक-अन्तर्द्वन्द्व तथा जीवन के प्रति उनकी मान्यताओं का उद्घाटन होता है वहाँ उनमें स्वाभाविकता अधिक रहती है क्योंकि अपने सम्बंध में समुचित अभिव्यक्ति का सर्वोत्तम माध्यम वही हो सकता है। यों तो पात्रों के चरित्र के विश्लेषण की विविध रीतियाँ हैं जिनकी चर्चा हम चरित्र-चित्रण वाले अध्याय में कर चुके हैं तथापि किसी चरित्र की आन्तरिक ग्रंथियों एवं भावनाओं को उसके कथन और उसकी क्रिया-प्रतिक्रिया के द्वारा अधिक स्पष्टता से व्यक्त किया जा सकता है। इसी प्रकार अपने अभिन्न मित्रों से बात करते हुए पात्रों के चरित्र के ऐसे पक्ष सहसा खुल जाते हैं जिनको वह दूसरों की नजर से छिपाकर रखे रहता है। अतः पात्रों के चरित्र-उद्घाटन के लिए कथोपकथन सर्वाधिक उपयुक्त साधन है। वर्मा जी ने भी पात्रों के चरित्र का विश्लेषण करने के लिए, उनके आन्तरिक स्वभाव एवं विचारों को स्पष्ट करने के लिए कथोपकथन का प्रयोग तो किया है, किन्तु उनकी संख्या बहुत अधिक नहीं है। उनके उपन्यासों में कुछ कथोपकथन ऐसे होते हैं, जिनको यदि पाठक सही मान ले तो वह चरित्र के विषय में बिल्कुल विपरीत धारणा ही बना ले और कुछ ऐसे कथोपकथन भी मिल जाते हैं जो अपने सहज सरल रूप में पात्रों के चरित्र के किसी न किसी अंग का उद्घाटन कर जाते हैं। इन दोनों प्रकार के कथोपकथनों को डॉ० रणवीर रांग्रा ने 'भ्रामक' कथोपकथन' एवं 'प्रकृत' कथोपकथन' की संज्ञा से अभिहित किया है।[1] वर्मा जी के उपन्यासों के 'प्रकृत कथोपकथन' किस प्रकार चरित्र-अनुशीलन में सहायक हुए हैं इसे हम कुछ उदाहरणों के माध्यम से स्पष्ट करेंगे।

वर्मा जी की प्रथम औपन्यासिक कृति 'पतन' में भी कथोपकथन के द्वारा शील-निरूपण करने की प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है, यद्यपि 'पतन' को स्वयं वर्मा जी ने भी नितांत असफल कृति माना है। उपन्यास के प्रारम्भ में ही रणवीर और प्रतापसिंह का संवाद एक ओर दोनों के शील-स्वभाव का प्रकाशन करता है और दूसरी ओर कथा भी अपने

1- देखिए - हिन्दी उपन्यास में चरित्र-चित्रण का विकास- पृष्ठ-293-294

स्वाभाविक क्रम में प्रवहमान रहती है । इस लम्बे वार्तालाप का प्रथमांश द्रष्टव्य है -

"लड़के, कब तक तेरी रक्त की प्यास नहीं शांत होगी, तूने आज फिर किसी की हत्या की, क्या तुझे मनुष्य के प्राण लेने में कुछ भी संकोच नहीं होता ?"

रणवीर प्रतापसिंह की बातें सुनकर मुस्किराया । थोड़ी देर तक मौन रहकर उसने प्रारंभ किया -" मनुष्य है क्या, जो उसकी हत्या करने में संकोच हो, और खासकर वे व्यक्ति, जो अपने स्वार्थ के लिए दूसरों की हत्या करते हैं । जानते हो, मैंने किसे मारा है ? यह एक डाकू था - डाकू । मेरा ऐसा नहीं, एक सभ्य डाकू । यह जमींदार अपने ऐश्वर्य से संतुष्ट न था । तृष्णा के प्रभाव से उसने अमानुषिक कार्य करने आरंभ कर दिए थे । शराबी और व्यभिचारी होना कम दुर्गुण नहीं है, पर इसने गरीबों को लूटना और भूखों को मारना आरंभ ~~किया~~ कर दिया था । इसका जीवन हजारों की मृत्यु के बराबर था, इसीलिए मैंने इसको संसार से हटा दिया । आप ही बतावें कि ऐसे मनुष्य का संसार में रहना उचित है ?"

रणवीर का मुख गंभीर हो गया था । वह प्रतापसिंह के मुख की ओर एकटक देख रहा था । प्रतापसिंह ने रणवीर की बातें सुनीं । उसने अपना सिर उठाया । धीरे से उसने कहा -" तुम शायद ठीक कहते हो ।" इसके बाद वह मुस्किराया, पर उसकी मुस्किराहट में करुणा की एक छाया था । उसने फिर कहा -"रणवीर, तुम्हारा कार्य भयानक है । प्रत्येक मनुष्य पापी है, अधिकांश तो पाप में इतने ~~संलग्न~~ संलग्न हो गए हैं कि उनका सुधरना असंभव है । तुम कहाँ तक संसार से पाप को हटाने की चेष्टा करोगे ? मुझको ही देखो ।"

रणवीर ने प्रतापसिंह की बातों में यथेष्ट सार्थकता देखी । थोड़ी देर तक सोचने के पश्चात् उसने कहा-" ठीक है, मैं तुम्हें जानता हूँ । कभी-कभी इच्छा होती है कि अपने पालने वाले को ही संसार से हटा दूँ, पर यह काम असंभव है । इसके कारण हैं - प्रथम तो तुम मेरे पिता-~~तुल्य~~ तुल्य हो, मैं तुम्हारा जीवन का आभारी हूँ । दूसरे, तुम मुझसे कहीं अधिक शक्तिशाली हो । तुममें न-जाने कौन-सी शक्ति है कि मैं तुम्हारे आगे आकर कायर बन जाता हूँ, तुम्हारी आज्ञा पर चलता हूँ ।" रणवीर चुप हो गया ।

प्रतापसिंह हँस पड़ा । उसने कहा-"रणवीर, यह न समझना कि तुम्हारे इस कथन से मुझे कुछ बुरा लगा । मैं तुम्हें जानता हूँ और तुमसे सचाई तथा निर्भीकता की आशा रखता हूँ ।"[1]

1- पतन- पृ0 8-9

उपर्युक्त उद्धरण से स्पष्ट हो जाता है कि पाठकों को रणवीर और प्रतापसिंह की चारित्रिक विशेषताओं से परिचित कराने के लिए ही उपन्यासकार ने इस वार्तालाप की अवतारणा की है। 'भूले बिसरे चित्र' का एक वार्तालाप भी ध्यान देने योग्य है जिससे नवल के प्रेम, भावुकता, निर्भीकता एवं दृढ़ निश्चय आदि का पूर्ण परिचय मिल जाता है। स्वतंत्रता-संग्राम में भाग लेने के पूर्व नवल अपनी मँगेतर से विदा लेने जाता है, उसका मन एक ओर देश-प्रेम से उद्भासित है तो दूसरी ओर उषा का प्रेम उसके मन को भिगो रहा है उस समय भी उसकी इच्छा-शक्ति और संकल्प बपवे० उसे अपने पथ से विचलित नहीं होने देते।

नवल उठ खड़ा हुआ, "मुझे दुःख है कि मैंने यह सब तुमसे कहा। हम लोग सदा के लिए एक-दूसरे से अलग हो चुके हैं। मैं तुमसे न जाने क्या कहने आया था और क्या कह गया।"

"आप मुझे मुक्त करने आए थे," व्यंग्य के तीखे स्वर में उषा बोली। "वह तो आप कह चुके हैं। इसके आगे भी क्या आपको कुछ कहना है?"

"हाँ, वह यह कि परसों मैं नमक-सत्याग्रह कर रहा हूँ। परसों दोपहर तक मैं शायद जेल चला जाऊँगा। जेल जाने से पहले तुम्हें एक बार देखने, तुम्हें अपनी समस्त शुभ-कामनाएँ प्रदान करने आया था मैं। लेकिन यहाँ आकर मैं अपने अन्दर वाली कटुता में उलझ गया। इसके लिए मुझे क्षमा करना।" और नवल चलने के लिए घूम पड़ा।

उषा ने दौड़कर नवल का हाथ पकड़ लिया, "क्या कहा। परसों जेल जा रहे हैं आप?" नवल को खींचकर उसने कुर्सी पर बिठा दिया, "नहीं, यह मत कीजिए, जेल मत जाइए। मेरी इतनी विनती मानिए।"

नहीं उषा रानी, कदम आगे बढ़ चुका है, अब पीछे लौटना असम्भव है। सब तैयारी कर ली है मैंने।"

"आपने मुझे समझने में गलती की है। मुझे राजेन्द्रकिशोर से कोई मोह नहीं है, मैं उससे प्रेम नहीं करती। आप जेल मत जाइए, एल-एल०बी० पास कर लीजिए। मैं आज अभी पापा से कहे देती हूँ कि मुझे उससे विवाह नहीं करना है। बोलिए, आप चुप क्यों हैं?

"बेकार है उषा यह सब। मैं निराश होकर जेल नहीं जा रहा हूँ। जो रास्ता मैंने अपनाया है उसकी यह परिणति है। संघर्ष-संघर्ष- संघर्ष! जीवन भर संघर्ष। यह

संघर्ष मेरे अन्दर की पुकार है उषा, और मैं जानता हूँ कि इस संघर्ष में तुम मेरा साथ नहीं दे सकोगी । इसलिए मैंने आते ही तुम्हें मुक्ति दे दी थी ।"

नवल की बात सुनकर उषा को एक धक्का-सा लगा, "तो आप मेरे कारण जेल नहीं जा रहे हैं ?"

"बिल्कुल नहीं," नवल बोला, "मैं केवल अपने कारण, अपने से प्रेरित होकर जा रहा हूँ ।"

उषा अपने ऊपर बुरी तरह झुँझला उठी । अपनी विजय, अपनी ब गुरुता की जो भावना उसके अन्दर आई थी, वह चूर-चूर हो गई, "समझी । तो आप मेरा मज़ाक उड़ाने आए थे, अपनी महत्ता मुझ पर प्रदर्शि प्रदर्शित करके मुझे अपमानित करने आए थे ।"

नवल फिर से उठ खड़ा हुआ, "नहीं उषा, मैं तुमसे हमेशा के लिए विदा लेने, और तुम्हें अपनी शुभकामनाएँ अर्पित करने आया था । अब शायद हम लोग फिर न मिलेंगे ।"

उषा तड़प उठी, "अपनी शुभकामनाएँ आप अपने पास रखिए, मुझे उनकी जरूरत नहीं है । जेल जाइए और भुगतिए । मेरे सम्बन्ध में आपको चिन्ता नहीं करनी चाहिए । मुझे सब-कुछ मिला है, सब-कुछ मिलता जाएगा । आप जो-कुछ कर रहे हैं अगर उसे ठीक समझते हैं तो जो-कुछ मैं कर रही हूँ, उसे मैं भी ठीक समझती हूँ । जाइए-जाइए, मैं आपसे घृणा करती हूँ, जाइए ।"[1]

प्रस्तुत संवाद नवल और उषा के अतिशय प्रेम को तो अभिव्यक्त करता ही है, साथ ही दोनों की स्वभावगत विशेषताओं का उद्घाटन भी करता है । नवल में हार्दिक कोमलता एवं भावुकता के साथ-साथ दृढ़-निश्चय एवं अन्याय के प्रति संघर्ष करने की प्रबल शक्ति के दर्शन होते हैं वहीं उषा अस्थिर चित्तवाली भावुक युवती प्रतीत होती है जो अपने वैभवपूर्ण जीवन और सुयोग्य देशभक्त प्रेमी के बीच उचित का निर्णय करने में असमर्थ है ।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि वर्मा जी ने अपने उपन्यासों में प्रकृत संवादों के माध्यम से पात्रों के शील- प्रकाशन में पर्याप्त सहायता ली है । इस दृष्टि से उनके

1- भूले बिसरे चित्र- पृ0 706-7-8

उपन्यासों के कुछ अन्य उदाहरण भी विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं।[1] इसके अतिरिक्त वर्मा जी के उपन्यासों के भ्रामक कथोपकथन भी परोक्ष रूप से पात्रों के चरित्र को अनावृत्त कर देते हैं इस तथ्य की पुष्टि- डॉ० रणवीर रांग्रा ने भी की है।[2] वर्मा जी के पात्र अधिकांशतः उच्च एवं सभ्य वर्ग के हैं अतः इनमें बौद्धिक जागरूकता का होना अपरिहार्य है। यह स्वाभाविक है कि वे अपनी बातचीत में उन अंशों को छिपा जायँ जिससे उनकी प्रतिष्ठा, सच्चाई एवं चरित्र पर आँच आती हो अथवा उन्हें किसी प्रकार की भी हानि पहुँचती हो। ये भ्रामक कथन शिक्षित एवं चतुर पात्रों की व्यवहार कुशलता एवं प्रत्युत्पन्नमतित्व को उजागर करते हुए उनकी हार्दिक उद्गारों को छिपा जाने की कला का परिचय दे जाते हैं। 'चित्रलेखा' को ही लें, उसके भ्रामक, वक्र एवं तर्कपूर्ण कथन उसके प्रगल्भ एवं वैदुष्यपूर्ण व्यक्तित्व को तो मुखरित करते ही है, साथ ही उपन्यासकार की टिप्पणी के कारण उसका ~~अब~~ अन्तर एवं ~~छलछद्मपूर्ण~~ पूर्णरूपेण उद्घाटित हो जाता है। इसी प्रकार वर्मा जी के अन्य उपन्यासों में भी भ्रामक कथोपकथन प्रत्यक्षतः तो नहीं, किन्तु अप्रत्यक्ष रूप से पात्रों के चरित्र के प्रकाशन में अवश्य सहायक हुए हैं।

1- चित्रलेखा- श्वेतांक-चित्रलेखा संवाद(पृ० 22 से 25), चित्रलेखा-बीजगुप्त संवाद-पृ० 63 से 66, तीन वर्ष- अजित-लीला वार्तालाप-पृ० 69-70, 83-84, टेढ़े मेढ़े रास्ते- रामनाथ-दयानाथ संवाद-पृ० 31 से 33, रामनाथ राजेश्वरी संवाद-पृ० 139-40, रामनाथ-प्रभानाथ संवाद- पृ० 460-61, भूले बिसरे चित्र- विद्या-बिन्देश्वरी-ज्वालाप्रसाद वार्तालाप-पृ० 677 से 680, रेखा- रेखा-योगेन्द्रनाथ कथोपकथन 272 से 274, रेखा-सोमेश्वर वार्तालाप-पृ० 123 से 25, सीधी सच्ची बातें - जसवन्त-कुलसुम संवाद-पृ० 145, जसवन्त-जगतप्रकाश वार्तालाप-पृ० 148, सबहिं नचावत राम गोसाईं- जबरसिंह धनवन्तकुँवर-संवाद-पृ० 227, राधेश्याम-रामलोचन संवाद-पृ० 254, जैकृष्ण-रामलोचन संवाद-पृ० 221, प्रश्न और मरीचिका- उदयराज-रूपा शर्मा संवाद पृष्ठ- 65-66, उदयराज-मंजीत वार्तालाप- पृष्ठ-276-77 आदि।

2- देखिए - हिन्दी उपन्यास में चरित्र -चित्रण का विकास- पृष्ठ-293

सामान्य अवस्था में की गयी बातचीत के अतिरिक्त आवेश की स्थिति में बोले गये कथन पात्रों की आभ्यंतरिक स्थिति का अधिक सच्च एवं यथार्थ चित्रण कर देते हैं। ऐसे कथन पात्रों के मन में कहीं गहरे धँसी हुई भावनाओं को भी व्यक्त कर देते हैं जिन्हें सामान्य स्थिति में वे पात्र कभी न व्यक्त होने देते। 'सीधी सच्ची बातें' की शिवदुलारी, जो अत्यंत दुश्चरित्र एवं विलासी स्त्री दिखती है, के मन में भी सच्चे प्रेम की कामना है, इसका परिचय उसके उत्तेजनापूर्ण शब्दों से ही मिलता है -"लेकिन मैं छिनाल नहीं हूँ। जो कुछ मैंने किया वह दूसरों को सुख पहुँचाने के लिए किया, शायद दूसरों को सुखी बनाने में मुझे सुख मिलता था। अपनी तरफ से मुझे कोई प्रेरणा नहीं हुई, सिवा एक दफ़ा के- रामगढ़ में।" इसके आगे वह कहती है -" एक तुम हो - एक तुम हो प्रोफेसर साहब, जिससे प्रेम करने की भावना कभी मेरे अन्दर जागी थी, लेकिन मैं पतिता, दुश्चरित्रा और छिनाल स्त्री- तुम्हारे जीवन में मैं अभिशाप बनकर ही आती। और मैंने अपने को दबा दिया। मुझे तो जिन्दगी को ढोना था।" (सीधी सच्ची बातें पृष्ठ-543) 'रेखा' में प्रोफेसर प्रभाशंकर भी पश्चाताप की आवेग-जनित स्थिति में रेखा की शारीरिक भूख एवं अपने अन्याय को स्वीकार कर लेते हैं। (रेखा-346) कथोपकथन के द्वारा पात्रों के व्यक्तिगत चरित्र को प्रकाशित करने के अब अतिरिक्त वर्मा जी ने विभिन्न सभाओं, साहित्यिक गोष्ठियों एवं मित्रों की बैठकों में होनेवाले सामूहिक वार्तालाप के द्वारा वर्ग या संस्था विशेष के समूह-चरित्र को अभिव्यंजित करने का सफल प्रयास किया है - इसकी विस्तृत चर्चा पहले की जा चुकी है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि वर्मा जी ने पात्रों के चरित्र-विश्लेषण के उद्देश्य सभी कथोपकथन की सृष्टि अपने उपन्यासों में की है।

कथाकार के उद्देश्य को स्पष्ट करनेवाले संवाद

कथाकार के व्यक्तिगत दृष्टिकोण अथवा उपन्यास-लेखन के उद्देश्य को स्पष्ट करने के लिए कथोपकथन एक बड़ा रोचक माध्यम है। उपन्यासकार अपने जीवन,समाज और जगत से सम्बंधित व्यक्तियों एवं वस्तुओं का चित्र ही अपने उपन्यास में प्रस्तुत करता है तथापि उनको देखने और अनुभव करने की उसकी एक निजी दृष्टि होती है, उनके सम्बंध में उसके व्यक्तिगत विचार होते हैं। एक सफल उपन्यासकार इन विचारों को कथा एवं पात्रों के साथ एकाकार करके ही प्रस्तुत करता है। वर्णनात्मक उपन्यासों में कथाकार अपने विचारों अथवा जीवन-दर्शन को अपनी टिप्पणी के द्वारा भी व्यक्त कर सकता है, किन्तु दूसरी शैलियों में लिखे उपन्यासों में किंचित् असावधानी उसे अकलात्मक एवं बोझिल बना देती है। इसलिए

उपन्यासकार अपने व्यक्तित्व से मिलते-जुलते पात्रों के मुख से अपनी विचार-सम्पदा प्रकट करते हैं। उपन्यास के पात्र परस्पर वार्तालाप करते-करते उपन्यासकार के उद्देश्य को सहज सहज-सरल रूप में व्यक्त कर दें, किन्तु उनसे सैद्धान्तिक प्रचार या विचार-आरोपण की गंध न आये, यही दशा उपन्यासकार की सफलता की कसौटी है।

वर्मा जी ने अपने विचार-प्रकाशन के लिए कथोपकथन का खूब खुलकर प्रयोग किया है। कहीं-कहीं अपनी रोचक एवं मनोमुग्ध कारिणी शैली के कारण वह इस कार्य में खूब सफल हुए हैं, किन्तु कहीं-कहीं विचार-प्रतिपादन करनेवाले संवाद अत्यधिक लम्बे और उबा देनेवाले हो गये हैं, ऐसा प्रतीत होता है मानों पात्र को धक्का देकर उपन्यासकार स्वयं वहाँ जम गया है और अपनी बात पाठक के मन में बिठाये बगैर हटेगा ही नहीं। 'चित्रलेखा' की काव्यात्मक शैली में प्रस्तुत छोटे-छोटे संवाद जहाँ वर्मा जी की विचार-सम्पत्ति को प्रभावशाली ढंग से पाठक के मन में गहरे जमा देते हैं वहीं उनके कुछ परवर्ती उपन्यासों के कथोपकथन अतिशय लम्बे और बोझिल बन गये हैं और उनकी पुनरावृत्ति तो बेहद खटकती है। 'चित्रलेखा', 'तीन वर्ष', 'रेखा', 'सीधी सच्ची बातें', 'सामर्थ्य और सीमा' और 'प्रश्न और मरीचिका' वर्मा जी के कुछ ऐसे उपन्यास हैं जिनमें कथोपकथन के द्वारा अपने विचार अथवा उद्देश्य को प्रतिपादित करने की प्रवृत्ति मुख्य रूप से उभरकर आयी है।

'चित्रलेखा' के संवादों का लगभग अर्द्धांश विचार-प्रकाशन के लिए प्रयुक्त हुआ है, इसलिए अनेक स्थलों पर संवाद लम्बे हो गये हैं, किन्तु ये अपनी उपयोगिता, पात्रानुकूलता एवं सरस शैली के कारण नीरस नहीं हो पाये हैं। चित्रलेखा के विचार प्रधान संवादों के सम्बंध में एक विद्वान आलोचक का कथन उल्लेखनीय है - "वासना-वेदना से सिक्त श्रृंगारिक कथानक के धरातल पर विकसित तथा उसमें सहायक-अतएव राग-प्रेरित-होने से ये प्रायः शुष्क नहीं हो पाते।"[1] 'चित्रलेखा' से एक उदाहरण द्रष्टव्य है जो वर्मा जी के उद्देश्य को अत्यंत स्वाभाविकता एवं कलात्मकता से प्रस्तुत करता है। चित्रलेखा सम्राट चन्द्रगुप्त की सभा में कुमारगिरि को परास्त करके भी स्वयं को विजयी नहीं मानती क्योंकि वह कर्तव्याकर्तव्य का विवेक किये बिना ही परिस्थिति के चक्र में पड़ जाती है अर्थात् कुमारगिरि के आकर्षक व्यक्तित्व से प्रभावित होने लगती है, इस सम्बंध में श्वेतांक से वार्तालाप करते हुए बीजगुप्त कहता है।

1- प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों की शिल्पविधि- डा० सत्यपाल चुघ-पृ० 417

'श्वेतांक, यह याद रखना कि मनुष्य स्वतंत्र विचारवाला प्राणी होते हुए भी परिस्थितियों का दास है। और यह परिस्थिति-चक्र क्या है, पूर्वजन्म के कर्मों के फल का विधान है। मनुष्य की विजय वहीं सम्भव है, जहाँ वह परिस्थितियों के चक्र में पड़कर उसी के साथ चक्कर न खाय, वरन् अपने कर्तव्याकर्तव्य का विचार रखते हुए उस पर विजय पावे। चित्रलेखा परिस्थितियों के चक्र में पड़ गयी है, कुमारगिरि का उसके जीवन में आना उसके लिए घातक है और उसका कुमारगिरि के जीवन में आना कुमारगिरि के लिए घातक है। दुर्भाग्यवश दोनों ही एक-दूसरे के जीवन में बिना जाने हुए अपनी-अपनी साधनाओं को भ्रष्ट करने के लिए आ गये हैं - भगवान ही उनकी सहायता कर सकता है।'[1]

बीजगुप्त के इस कथन के द्वारा वर्मा जी ने 'परिस्थिति के चक्र' और 'नियतिवाद' के प्रति अपनी आस्था प्रकट करते हुए भी यह स्पष्ट कर दिया है कि जीवन में 'कर्तव्याकर्तव्य' का विवेक ही सर्वाधिक महत्वपूर्ण है, वही मनुष्य को ऊँचा उठा सकता है, कालजयी बना सकता है।

एक अन्य उद्धरण 'रेखा' से द्रष्टव्य है। रेखा भावना के प्रवाह में बहकर विश्व-प्रसिद्ध प्रोफेसर प्रभाशंकर से विवाह करके अपनी आत्मा की भूख को संतुष्ट कर लेती है, किन्तु उसका तन आत्मा से जुड़ नहीं पाता और इसीलिए वह एक के बाद एक अनेक पुरुषों के प्रति आकृष्ट होती जाती है, फिर भी उसका आग्रह है कि वह 'प्रोफेसर से प्रेम करती है।' इस सम्बंध में वर्मा जी का दृष्टिकोण डॉक्टर योगेन्द्रनाथ के कथन के द्वारा पूर्णरूपेण उद्घाटित हो जाता है और 'रेखा' उपन्यास के लेखन का उद्देश्य भी स्पष्ट हो जाता है। देखिए -

'मैंने तुमसे कब कहा कि तुम प्रोफेसर से प्रेम न करो। लेकिन मैं तुमसे फिर बड़ा कड़वा और कठोर सत्य कह रहा हूँ- तुम प्रोफेसर से प्रेम नहीं करतीं। उनके प्रति तुम्हारे अन्दर एक ममता की भावना है, तुम्हारी आत्मा पर उनकी आत्मा छाई हुई है। लेकिन प्रेम यह तो नहीं है। प्रेम आत्मा और शरीर इन दोनों के समान भाव से एक-दूसरे में लय की प्रक्रिया का नाम है। ऐसा नहीं कि तुम यह जानती न हो - ज्ञानवती को विवाह करने से रोकने के समय यह सत्य तुम्हारे सामने था, लेकिन अपने मामले में तुम स्वयं अपने को धोखा दे रही हो।'[2]

1- चित्रलेखा- पृ० 60

2- रेखा- पृ० 273

प्रेम की बहुचर्चित समस्या के प्रति वर्मा जी का दृष्टिकोण कितने सुलझे हुए ढंग से उपर्युक्त कथन में व्यक्त हो गया है। ऐसे ही दार्शनिक एवं चिंतन-मननपूर्ण भावों की सरल अभिव्यक्ति वर्मा जी की विशेषता है। ऐसे ही कथोपकथनों को दृष्टि में रखते हुए एक समीक्षक ने लिखा है -"वर्मा जी के संवादों की एक बड़ी विशेषता है कि वह कठिन से कठिन दार्शनिक बात भी बड़ी ही सरलता से प्रस्तुत कर देते हैं।"[1] किन्तु विचारों की ऐसी सहज अभिव्यक्ति कृति का 'सीधी सच्ची बातें' में प्राय: अभाव दिखता है इसीलिए उसमें 'उद्देश्य स्पष्ट करने वाले कथोपकथन' प्राय: नीरस और लम्बे दिखते हैं। उदाहरण स्वरूप-डॉ० शर्मा और जयप्रकाश के अर्थ, घृणा, अर्थव्यवस्था सम्बंधी वार्तालाप[2], रामकिशोरसिंह और जगतप्रकाश के विश्व-युद्ध से सम्बंधित वार्तालाप[3] समाज और व्यक्ति सम्बंधी विवाद[4], अहिंसा[5], पूँजीवाद[6] और हिन्दू-मुस्लिम समस्या सम्बंधी वार्तालाप[7] अत्यधिक लम्बे और उपन्यास को बोझिल बनाने वाले हैं। यद्यपि ये प्रसंग और पात्रों के मानसिक धरातल के अनुकूल हैं, तो भी इनकी पुनरावृत्ति और सूक्ष्म विश्लेषण की प्रवृत्ति उपन्यास की रोचकता एवं चारुता को क्षति पहुँचाती है। एक स्थान पर संभवत: उपन्यासकार को भी इसका अनुभव हुआ है क्योंकि ऐसे ही एक वार्तालाप के पश्चात् उपन्यास कृति का ही एक पात्र कमलाकान्त व्यंग्य करता है -"जगतप्रकाश, कामरेड जसवन्त कपूर ने तुम्हें भी अपनी थीसिज़ समझा दी। मैं लेटा-लेटा सब सुन रहा था।"[8]

अंतत: कहा जा सकता है कि वर्मा जी ने अपने कई उपन्यासों में पात्रों के वार्तालाप के माध्यम से अपने उद्देश्य एवं विचार-राशि को प्रकाशित करने का यत्न किया है, जहाँ कहीं से कथोपकथन संक्षिप्त एवं रोचक हैं, उन्होंने अपने पाठकों को अत्यधिक प्रभावित किया है,

---

1-	हिन्दी के सात युगान्तकारी उपन्यास-रामप्रकाश कपूर, पृ० 105	
2-	सीधी सच्ची बातें-	पृ० 335 से 337
3-	,, ,,	पृ० 349 से 354
4-	,, ,,	पृ० 42-43, 259, 568, 578
5-	,, ,,	पृ० 61, 139, 177, 573
6-	,, ,,	पृ० 121, 517
7-	,, ,,	पृ० 178 से 181
8-	,, ,,	पृ० 44

किन्तु कहीं-कहीं उनकी विस्तृति ने उपन्यास के प्रवाह में बाधा भी पहुँचायी है। वर्मा जी जैसे रोचक एवं सरस शैली के कथाकार के लिए इस त्रुटि से बचना असम्भव नहीं था किन्तु,ऐसा प्रतीत होता है कि कथाकार के ज्ञान और चिंतन ने संभवत: उसे इसके लिए बाध्य कर दिया था।

कथोपकथन के व्याज से पूर्व संकेत

कभी-कभी कथाकार उपन्यास की घटनाओं की अग्रिम सूचना देने के लिए भी कथोपकथन का अवलम्ब लेते हैं। इससे उपन्यास में कलात्मकता की अभिवृद्धि होती है क्योंकि पाठक के मन में इससे उत्सुकता का संचार होता है और वह उपन्यास के अगले मोड़ के लिए प्रस्तुत हो जाता है। ऐसे कथोपकथन पाठक की जिज्ञासा को लगातार उत्प्रेरित करते रहते हैं और उसे ऊबने से बचाते हैं। वर्मा जी ने भी उपन्यासों में ऐसे संवादों की आयोजना करके अपने उपन्यासों के कलात्मक सौन्दर्य की अभिवृद्धि की है।

'सामर्थ्य और सीमा' का एक उद्धरण विशेष उल्लेखनीय है। राजा शमशेर बहादुर सिंह एक उत्साही नवयुवक थे, इसलिए अपने राज्यारोहण के पश्चात् वह सुमनपुर के विकास की एक सुविस्तृत योजना बनाते हैं और इस योजना के लिए अपने चाचा जी का सहयोग प्राप्त करना चाहते हैं -

'कक्का जी, सुमनपुर को आप अपना समझिए। इस सुमनपुर को बढ़ाने के लिए, इसको विकसित करने के लिए, एक ऐसे आदमी की आवश्यकता है जो मेरे ही प्राणों और मेरी भावना को लेकर इस काम को सम्पन्न करे। कक्का जी, आप मेरे पिता तुल्य हैं। आप यशनगर छोड़ना चाहते हैं, तो इस सुमनपुर को संभालिए, मेरी आपसे यही विनती है।'

इस निवेदन का उत्तर जिन शब्दों में मेजर नाहरसिंह देते हैं वह प्रस्तुत उपन्यास की आधारशिला है, उसके आधार पर उपन्यास की घटनाओं का भवन खड़ा है। मेजर नाहरसिंह जो भविष्यवक्ता के रूप में प्रसिद्ध हैं, कहते हैं -

'छोटे राजा, मैं आपका सेवक हूँ; तन-मन-धन से आपका हूँ। जैसी आपकी मर्जी है वैसा ही होगा। लेकिन एक बात मैं आपसे कह रहा हूँ, सुमनपुर को जो आप बसा रहे हैं उससे यशनगर नष्ट हो जाएगा। भविष्य में यशनगर के खण्डहर भी लोगों को ढूंढे न मिलेंगे। लेकिन छोटे राजा, नियति के क्रम को रोकने की सामर्थ्य किसमें है? यशनगर नष्ट होकर

रहेगा और इस यशनगर के मिटने के साथ गुम्फित ठाकुरों का यह राजवंश भी सदा के लिए मिट जाएगा।'[1]

एक भविष्यवक्ता के मुख से नि:सृत यह कथन राजा शमशेरबहादुर सिंह को तो भयभीत कर ही देता है, साथ ही पाठक भी ऐसी घटना के सम्बंध में जिज्ञासु हो उठता हैऔर उसे ऐसा आभास हो जाता है कि उपन्यास के अगले पृष्ठों में इस प्रकार की घटना अवश्य ö0öö0ö घटेगी।

एक उद्धरण 'रेखा' से भी द्रष्टव्य है। प्रोफेसर प्रभाशंकर अपनी अस्वस्थता के दिन में एक दिन स्वप्न देखते हैं और चौंक कर जाग जाते हैं -'एक गिलास पानी।' रेखा ने देखा कि प्रभाशंकर काँप रहे हैं, उनके माथे पर पसीने की बूँदें फलक रही हैं।

रेखा घबराकर उठ खड़ी हुई, उसने प्रभाशंकर को पानी दिया। पानी पीकर प्रभाशंकर सुव्यवस्थित हुए। लेटकर उन्होंने रेखा का हाथ पकड़ लिया। फिर रेखा को अपने आलिंगन-पाश में लेते हुए कहा,'उफ, कितना भयानक सपना था। एक दैत्य, कितना कुरूप, कितना भयानक - तुम्हें खींचे लिये जा रहा था और तुम चिल्ला रही थीं। मैंने उस दैत्य से तुम्हें बचाने की कोशिश की, और उस दैत्य ने मुझे जमीन पर पटक दिया। इसके बाद तुम्हारा रोना-चिल्लानाबन्द हो गया और तुम हँसने लगीं। उफ! तभी मेरी आँखें खुल गई।'

रेखा ने प्रभाशंकर के सिर पर हाथ फेरते हुए कहा,'आपका पेट ठीक नहीं है,रात में आप हल्का खाना खाया कीजिये, मैं कल से इसका प्रबंध कर दूँगी।'

'हाँ, इधर पेट की शिकायत बढ़ गई है, कल डाक्टर को दिखलाउँगा।' प्रभाशंकर ने रेखा को अपने आलिंगन-पाश से मुक्त करते हुए कहा,'लेकिन यह कितना भयानक स्वप्न था। तुम्हें मुझसे कोई अलग नहीं कर सकता, सिवा मृत्यु के।' प्रभाशंकर के स्वर में अब असीम करुणा आ गई,' लगता है जैसे मेरी मृत्यु की गति में तेजी आ गई है।'[2]

प्रभाशंकर के स्वप्न और उसकी प्रतिक्रिया विषयक कथन उपन्यास के 'क्लाइमैक्स' की ओर स्पष्ट संकेत कर देते हैं और हमारा मन उपन्यास के कारुणिक अंत के लिए तैयार हो जाता है। इसी प्रकार 'रेखा' में ही प्रोफेसर प्रभाशंकर का कथन-' मैं तुमसे कहता हूँ रेखा, यही व्यक्ति मेरा स्थान लेगा।'[3] मानो उपन्यास के अगले पृष्ठों में बराबर गूँजता

1- सामर्थ्य और सीमा- पृ० 70

2- रेखा- पृ० 307

3- ,, पृ० 304

रहता है तथा रेखा इसी कथन के अनुरूप डॉ० योगेन्द्रनाथ को अपना तन-मन-सब अर्पित कर देती है लेकिन अंत में प्रभाशंकर की ममता उसके पैर में बेड़ियाँ डाल देती है और वह प्रभाशंकर व योगेन्द्रनाथ दोनों को गँवाकर विक्षिप्त हो जाती है।

इस प्रकार के पूर्व संकेत देनेवाले कथोपकथन वर्मा जी के विभिन्न उपन्यासों में पर्याप्तरूप से उपलब्ध होते हैं।

वातावरण - सृष्टि करने वाले कथोपकथन

अपने उपन्यासों में उपयुक्त वातावरण उपस्थित करने के लिए उपन्यासकार कथोपकथन का आश्रय भी लेते हैं, यथोचित कथोपकथन के द्वारा विभिन्न संस्कृति, समाज,समुदाय एवं देशकाल के परिवेश को स्वाभाविकता प्रदान की जा सकती है। वर्मा जी ने अपने ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर आधारित उपन्यासों -`चित्रलेखा` और `पतन` में तो इसका विशेष ध्यान रखा ही है, अपने सामाजिक उपन्यासों में भी उन्होंने कथोपकथन के द्वारा विभिन्न स्तर एवं समुदाय के वातावरण को यथारूप प्रस्तुत कर दिया है।

`पतन` का एक कथोपकथन देखिए -

नवाब साहब राधारमण(प्रतापसिंह) से कहते हैं -`कहिए ज्योतिषी जी, वजीर साहब मुझसे क्या कहना चाहते हैं?`

राधारमण ने मुस्किराते हुए कहा -`हुज़ूर, वज़ीर साहब के न कहने की लाख कोशिश करते हुए भी मैं उन्हीं के मुख से अपने सामने सब कहलाए देता हूँ, गो कि मामला ऐसा नहीं है कि हर एक शख़्श उसे सुन सके।` इतना कहकर राधारमण ने अपनी ओर देखते हुए अलीनकी के नेत्रों से अपने नेत्र मिला दिए। अलीनकी काँपने लगा। लड़खड़ाती हुई जबान में उसने कहा-`हुज़ूर, नेपाल पर चढ़ाई करने के लिए फिरंगियों ने आपके मुल्क से होते हुए अपनी फौज भेजने की इजाजत माँगी है।` राधारमण ने नवाब वाजिदअली शाह की ओर देखा। वज़ीर अलीनकी ने अपनी आँखें झुका लीं।

नवाब साहब हँस पड़े -` वज़ीर साहब, ज्योतिषी जी आप पर भी हावी आ जाते हैं। अच्छा,तो फिर क्या किया जाय?`

वज़ीर साहब ने सिर झुकाए हुए उत्तर दिया -`हुज़ूर, इजाज़त दे देने में क्या हर्ज है? उसमें हमारा तो कोई नुकसान नहीं।`

नवाब साहब कुछ सोचने लगे -"ज्योतिषी जी, आप बतलावें कि क्या किया जाय?" राधारमण ने कुछ सोचकर उत्तर दिया - "मेरा तो यह ख्याल है कि आप इजाजत न दें।" नवाब साहब ने आँखें बंद कर लीं।

आँखें खोलकर नवाब वाजिदअली शाह ने कहा-" वज़ीर साहब, आप खत भेज दें कि अवध के सूबे से अँगरेजों की फौज के गुज़रने की मेरी इज़ाजत नहीं है।"

वज़ीर साहब का मुख क्रोध से लाल हुआ - फिर पीला। उन्होंने कहा-" जो मर्जी हुज़ूर की।"[1]

नवाब, वज़ीर और राधारमण के इस वार्तालाप में तत्कालीन राजभाषा उर्दू का बाहुल्य तो है ही, साथ ही प्रस्तुत वार्तालाप में राजकीय शिष्टाचार का भी पूरा ध्यान रखा गया है। नवाब वाज़िदअली शाह के दरबार की वस्तुस्थिति के किसी संकेत के बिना इन तीनों पात्रों के वार्तालाप ने तत्कालीन वातावरण की सर्जना कर दी है। इसी प्रकार 'चित्रलेखा' में भी विभिन्न पात्रों के वार्तालाप वातावरण के निर्माण में पूर्ण सहायक सिद्ध हुए हैं।

वर्मा जी के आधुनिक समाज से सम्बंधित उपन्यासों में भी विशिष्ट वर्ग या समुदाय के कथोपकथन अपने युग एवं वातावरण के अनुकूल हैं। 'सबहिं नचावत राम गोसाईं' में फविफशिष्ठ० ववँ०यष०सुदाय०के०कथोकथन०अपने०युग०एवं०वातावरण०के०अनुकूल०है०।० हम उम्र दोस्तों की एक मीटिंग का दृश्य देखिए -

" उस साले राधेश्याम की लानत के रूप में।" दोनों आदमियों ने यह कहते हुए अपने गिलास उठाए।

जैकृष्ण ने झंझावात से कहा,"- झंझावात! चुनाव आ रहे हैं, तुम भी लड़ जाओ न, कहो तो एस०एस०पी० पार्टी वालों से कहूँ, वह कुछ चुने हुए और छँटे हुए शोहदों की तलाश में हैं।"

झंझावत बड़ी जोर से हँसा,"मैं चुनाव लड़ूँगा और वह भी एस०एस०पी० की तरफ से? मेरी हड्डी-पसली सही-साबित रहने दोगे कि नहीं? वल्कि गाली तो मैं बेतहाशा दे सकता हूँ, लेकिन हाथापाई में मैं अधमरा हो जाऊँगा। नहीं बाबा बख्शी। इसके लिए यह रामलोचन ठीक रहेंगे। गाली तगड़ी और धाराप्रवाह दे सकते हैं और मारपीट में तगड़े-से तगड़े सोशलिस्ट नेता से इक्कीस ही पड़ेंगे।

1- पतन- पृ० 194

जैकृष्ण ने प्रसन्नता के आवेग में कहा, "वाह-वाह क्या बात कह दी है प्यारे ! मुँह चूम लेता तुम्हारा अगर तुम इतने खूसट न होते । रामलोचन ठीक रहेंगे - बिल्कुल ठीक रहेंगे चुनाव लड़ने के लिए । फंफावत ! तुम्हारे मुँह में घी-शक्कर ।"

हल्का-सा सरूर अनुभव कर रहा था, रामलोचन , दिनभर की थकावट दूर हो रही थी, हल्की-सी रंगीनी आँखों के आगे उभर रही थी । उसने जैकृष्ण से पूछा, "तो तुम्हारा मतलब-यानी तुम समझते हो कि मैं चुनाव लड़ूँ ?"

फंफावत की आँखों के आगे रंगीनी के साथ-साथ कुछ उल्लास भी तैरने लगा था, उसने कहा, "यही तो मैं शाम से अनुभव कर रहा हूँ, डीलक्स रेस्तोराँ में सभापति की हैसियत से जो भाषण इन्होंने दिया था उसे सुनकर । बड़ी चुनी हुई गालियाँ यह दे सकते हैं-पूरा फिचकुरवाद यह उतार सकते हैं ।"

जैकृष्ण चौंका, "यह फिचकुरवाद कौन-सा नया वाद ईजाद हुआ है इस साहित्य में?"

फंफावत मुसकराया, "ईजाद तो इसकी लेफ्टिज्म द्वारा हुई है, लेकिन साहित्य में इसने वाद का रूप धारण कर लिया है । यानी इस कदर गालियाँ दो कि मुँह से फिचकुर निकलने लगे । यह फिचकुरवाद असल में सक्रिय राजनीति का भाग है ।"

जैकृष्ण ने ताली बजाकर कहा, "लाँग लिव फिचकुरवाद ! लेकिन फंफावत, इस रामलोचन की गाली देने के साथ हाथ छोड़ने की भी आदत हो गई है ।"

तीनों के गिलास खाली हो गए थे । फंफावत ने इस बार तीनों गिलास भरे, "जनाब यह हाथ छोड़ना, यानी धौल-धप्पा, जूता-लात, यह तो आज राजनीति का लेटेस्ट फ़ेज़ बन रहा है, तो इसी से मैं कतराता हूँ, वरना मैं भी इस दफे चुनाव लड़ जाता । रामलोचन इस सबमें खरे उतरेंगे ।"[1]

उपर्युक्त संवाद में अभिन्न मित्रों की आत्मीयतापूर्ण बैठक का एकदम सजीव वातावरण उपन्यासकार ने उपस्थित कर दिया है । इसीप्रकार तीन वर्ष के प्रथम खण्ड के द्वितीय परिच्छेद के वार्तालाप विश्वविद्यालय के प्रारम्भिक दिनों के वातावरण को बड़े ही स्वाभाविक रूप में उपस्थित कर देते हैं।[2] वर्मा जी के अन्य उपन्यासों में भी गोष्ठियों, यात्राओं, बौद्धिक विचार-विमर्श एवं परिवारों के वातावरण को कथोपकथन के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि वर्मा जी ने अपने उपन्यासों में कथोपकथन का विभिन्न उद्देश्यों की पूर्ति के लिए उपयोग किया है, किन्तु यहाँ यह उल्लेख कर देना

1- सबहिं नचावत राम गोसाईं- पृ0 270-271

2- तीन वर्ष- पृ0 5 से 10

आवश्यक प्रतीत होता है कि उन्होंने एक समय या एक स्थल पर केवल एक ही उद्देश्य की पूर्ति के लिए कथोपकथन की अवतारणा नहीं की है। उनके कथोपकथन प्रायः बहुउद्देशीय हुआ करते हैं। दो या दो से अधिक पात्रों का वार्तालाप एक साथ कथा के विकास, पात्रों के चरित्र-विश्लेषण और वर्मा जी के उद्देश्य की पूर्ति का कार्य कर सकता है या वह चरित्र-निर्माण और वातावरण-सृष्टि के उद्देश्य से भी आयोजित किया जा सकता है। कहने का तात्पर्य यह है कि वर्मा जी के उपन्यासों के कथोपकथन एक साथ कई उद्देश्यों की पूर्ति करने में सफल हुए हैं।'सामर्थ्य और सीमा' के एक उद्धरण से हम अपनी बात स्पष्ट करना चाहेंगे। विशिष्ट अतिथियों के आगमन के पूर्व रानी मानकुमारी और मेजर नाहरसिंह के लम्बे वार्तालाप का उत्तरांश द्रष्टव्य है -

'कक्का जी अपने मन के पाप को मैं आपको अब बतलाती हूँ। आज न जाने क्यों जीवन की रंगीनी के प्रति मुझमें मोह जाग उठा है। मेरे यहाँ कुछ विशिष्ट मेहमान आ रहे हैं। इन लोगों के व्यक्तिगत जीवन से मुझे किसी प्रकार का परिचय नहीं, शायद इनमें किसी से भी फिर कभी मेरा मिलना तक न हो। लेकिन इन लोगों के सामने अपने सौन्दर्य के प्रदर्शन की भावना मेरे मन में उठ खड़ी हुई है। यह सब क्यों? मेरे अन्दर एक अजीब-सी पुलकन भर गई है, यह किसलिए? आपसे अपनी बात कह सकती हूँ, इस दुनिया में एक आप हैं मेरे लिए। आप ही बतलाएँ कि क्या कुछ अनुचित हो रहा है मुझसे? मुझे अपनी इस भावना से बड़ा डर लग रहा है, मुझे स्वयं अपने से डर लग रहा है।'

मेजर नाहरसिंह की मुद्रा कुछ अजीब ढंग से कोमल हो गई, उठकर वह रानी मानकुमारी के पास आ गए, और उनके सिर पर हाथ रखकर बोले, 'तुम जो कुछ चाह रही हो और कर रही हो वह स्वाभाविक है, और जो स्वाभाविक है वह उचित है। बहुत थोड़े समय के लिए यह युवावस्था का पागलपन प्राप्त हुआ करता है लोगों को, और यही पागलपन जीवन की वास्तविक सुन्दरता की उपलब्धि है। यह यौवन पागलपन का एक खेल है, खेल लो इसे, रानी बहू! इस खेल का सुख ही एकमात्र उपलब्धि है जीवन की। यही क्रीड़ा हमारे अस्तित्व की सार्थकता है। दुनिया में सब लोग खेलते हैं अपने-अपने ढंग से। इस खेल से विरक्ति ही निर्जीवता का पहला लक्षण है। तुम निर्जीव बनते-बनते बच गईं, रानी बहू-तुम्हें मेरी बधाई। अच्छा, अब बाहर चलूँ, मेहमान लोग आ रहे हैं-मालूम होता है।'[1]

1- सामर्थ्य और सीमा- पृ० 137-38

प्रस्तुत वार्तालाप से जहाँ रानी मानकुमारी के हृदयगत भावों का उद्घाटन होता है, वहीं वर्मा जी का जीवन-दर्शन भी स्पष्ट हो गया है। विधवा रानी मानकुमारी अपूर्व सुन्दरी और युवती नारी हैं, एक-से-एक प्रतिष्ठित और विख्यात मेहमानों के समक्ष अपने रूप के प्रदर्शन की भावना उनमें उठना स्वाभाविक है, अपने कथन में उन्होंने अपना हृदय खोलकर रखदिया है। इस प्रकार उनका मनोविश्लेषण इस कथन के द्वारा हो जाता है तो दूसरी ओर मेजर नाहरसिंह का प्रत्युत्तर जीवन के स्वस्थ उपभोग के प्रति वर्मा जी के विश्वास को प्रकट कर देता है। नाहरसिंह के इस कथन के माध्यम से वर्मा जी ने स्पष्ट कर दिया है कि वह इच्छाओं का दमन करके शरीर को पीड़ा पहुँचाने में विश्वास नहीं रखते वरन् वासनाओं के स्वस्थ परितोष में ही उनकी आस्था है। चरित्र-विश्लेषण एवं उद्देश्य-स्पष्टीकरण के अतिरिक्त इस वार्तालाप के द्वारा कथा का विकास भी स्वाभाविक रीति से होता रहता है। मेहमानों के आने की सूचना भी इस संवाद में दे दी गयी है वह भी ऐसे मेहमान जो उपन्यास उपन्यास के अगले हिस्से में प्रमुख भूमिका निभाते हैं। इस प्रकार वर्मा जी के उपन्यासों में कथोपकथन की सोद्देश्यता एवं सार्थकता स्वतः सिद्ध हो जाती है।

कथोपकथन के गुण और वर्मा जी के उपन्यासों के कथोपकथन की विशेषताएँ

कथोपकथन का उद्देश्यपूर्ण होना ही उसके अच्छे अथवा सफल होने की कसौटी नहीं हो सकती वरन् कुछ ऐसे गुण कथोपकथन के लिए अपरिहार्य हैं जो उपन्यास की सफल प्रभावान्विति एवं लोकप्रियता में अपना विशेष सहयोग प्रदान कर सकते हैं। इनमें स्वाभाविकता, नाटकीयता, सम्बद्धता, रोचकता एवं सरसता, तथा संक्षिप्तता प्रमुख हैं। इन्हीं गुणों के परिप्रेक्ष्य में वर्मा जी के उपन्यासों के कथोपकथन की विशेषताओं पर विचार कर लेना हम समीचीन समझते हैं।

स्वाभाविकता :- घटना-क्रम को वास्तविकता प्रदान करने के लिए एवं पात्रों के स्वतंत्र व्यक्तित्व को अस्तित्व में लाने के लिए कथोपकथन का स्वाभाविक होना नितांत आवश्यक है। कथोपकथन की स्वाभाविकता के विषय में डॉ० रामलखन शुक्ल का मत द्रष्टव्य है - "कथोपकथन का प्रयोग करते समय लेखक को यह ध्यान रखना चाहिए कि जहाँ पर जिन पात्रों के मध्य उसका प्रयोग किया जाता है, उनके मध्य उनका प्रयोग उचित है या नहीं। स्वाभाविकता के लिए औचित्य आवश्यक है। औचित्य में स्थान, काल, व्यक्ति और कार्य-व्यापार का औचित्य सन्निविष्ट है। इन सबको ध्यान में रखकर यदि कथानक की योजना होगी, तभी वह स्वाभाविक हो सकेगा।"[1] 'औचित्य' को और अधिक स्पष्ट करते हुए डॉ० रामअवध

1- हिन्दी उपन्यास कला-डॉ० रामलखन शुक्ल, पृष्ठ-36

द्विवेदी लिखते हैं -"औचित्य का अर्थ यह है कि प्रत्येक पात्र को अपने चरित्र और अपनी अवस्था के अनुसार बोलना चाहिए। राजा और विदूषक की बातचीत में भेद होगा और वैसे ही सन्त और असज्जन जनों की वाणी में भी विभिन्नता होगी। कोई व्यक्ति न केवल अपने कार्यों से वरन् अपने कथनों से जाना जाता है। असंगति तब उत्पन्न होती है जब एक ही पात्र सम्भावना के प्रतिकूल विभिन्न अवसरों पर विभिन्न प्रकार की बातचीत करता है जिससे उसके विश्वासों का पता नहीं चलता। जैसे एक ही पात्र कभी उन्नत चरित्र वाला मालूम पड़ता है और कुछ देर के बाद अत्यंत गर्हित चित्तवाला।"[1]

उपर्युक्त कथनों से स्पष्ट हो जाता है कि कथोपकथन की स्वाभाविकता की सबसे अनिवार्य शर्त पात्र, स्थान, काल और कार्य-व्यापार के प्रति उसके अनुकूल एवं उपयुक्त होने की है। अतः कथोपकथन के 'अनुकूलता' एवं 'उपयुक्तता' नामक गुणों को हम स्वाभाविकता के अन्तर्गत ही समाहित कर सकते हैं।[2] कथोपकथन स्वाभाविक तभी होंगे जब वह रचना में बलात् ठूँसे हुए प्रतीत न हों वरन् वह बोलने वाले पात्रों की प्रकृति एवं परिस्थिति विशेष में उनके भावों के अनुरूप हों। इसके लिए पात्रों की सामाजिक, मानसिक एवं शैक्षणिक स्थिति एवं घटना-विशेष को ध्यान में रखकर भाषा का प्रयोग करना आवश्यक है। भाषा-शैली वाले अध्याय में हम इसके सम्बंध में विस्तृत रूप से विचार करेंगे। यहाँ इस सम्बंध में इतना देख लेना पर्याप्त होगा कि वर्मा जी के उपन्यासों में कथोपकथन किस स्थिति तक स्वाभाविक एवं अनुकूल बन पड़े हैं।

वर्मा जी ने अपने उपन्यासों में विभिन्न काल, संस्कृति, प्रांत, क्षेत्र, वर्ग एवं जाति से सम्बंधित लोगों को स्थान दिया है और वह उनके अनुकूल भाषा का रूप सँवारने में पर्याप्त सफल हुए है। मौर्यकालीन इतिहास की पृष्ठभूमि पर आधारित 'चित्रलेखा' उपन्यास में पात्रों की भाषा संस्कृत बहुल हिन्दी है तो उनके मुसलमान पात्र अरबी-फारसी मिश्रित हिन्दी का प्रयोग करते दीखते हैं। इसी प्रकार बंगाली भाषी तथा बम्बई निवासी लोगों की बोली में हिन्दी का प्रयोग स्थानीय विशेषताओं से युक्त है। उत्तर प्रदेश के ग्रामीण

1- देखिए -साहित्य रूप- डॉ० राम अवध द्विवेदी- पृष्ठ-85

2- डॉ० मक्खनलाल शर्मा और डॉ० रामलखन शुक्ल ने अपने ग्रंथों 'हिन्दी उपन्यास : सिद्धान्त और समीक्षा' तथा 'हिन्दी उपन्यास कला' में अनुकूलता एवं उपयुक्तता को 'स्वाभाविकता' से पृथक् गुणों के रूप में स्थान दिया है।

दोत्रों के पात्र अवधी का ही प्रयोग करते दिखलाये गये हैं इस प्रकार उनके लगभग सभी पात्र अपनीवैयक्तिकता की रक्षा करने में काफी हद तक सफल हुए हैं।`चित्रलेखा` उपन्यास में कुमारगिरि,चित्रलेखा और बीजगुप्त का एक संवाद देखिए -

`भूले भटके हुए पथिक रात्रि-भर के लिए आश्रय चाहते हैं।` कुमारगिरि ने उत्तर दिया -`उनका स्वागत है। मेरी कुटी प्रत्येक भूले हुए प्राणी के लिए खुली है।`अपने उत्तर पर कुमारगिरि स्वयं हँस पड़े।

उसी समय एक स्त्री के साथ एक पुरुष ने कुटी में प्रवेश किया। स्त्री को देखकर योगी कुमारगिरि चौंक उठे। उन्होंने पुरुष से कहा -`अतिथि! तुमने मुझे पहले ही क्यों नहीं बताया कि तुम्हारे साथ एक स्त्री भी है। तुम्हें यह ज्ञान होना चाहिए कि यह उस योगी की कुटी है, जो संसार छोड़ चुका है।`

पुरुष ने उत्तर दिया -` भगवन्, मुझे यह तो ज्ञात है कि यह एक योगी की कुटी है; पर यह नहीं सोचा था कि एक इन्द्रिय जीत योगी को केवल रात्रि-भर के लिए एक स्त्री को, और उस स्त्री को, जो एक पुरुष के साथ है, आश्रय देने में संकोच होगा।`

इस उत्तर से कुमारगिरि निस्तेज हो गये। उस समय तक स्त्री आसन पर बैठ गयी थी और दीपक के मन्द प्रकाश के सामने उसका मुख हो गया था। कुमारगिरि ने कहा - `अतिथि! मैंने इस कुटी में स्त्री को आश्रय देने में संकोच किया था, वह केवल इसलिए कि स्त्री अन्धकार है, मोह है, माया है और वासना है। ज्ञान के आलोकमय संसार में स्त्री का कोई स्थान नहीं। पर फिर भी तुम दोनों मेरे अतिथि हो; इसलिए तुम दोनों का अतिथि-सत्कार करना मेरा कर्तव्य है।`

स्त्री अभी तक इस वार्तालाप को आश्चर्य तथा कौतूहल के साथ सुन रही थी। उसने कुमारगिरि के वाक्य समाप्त होने पर उनके सामने अपना मस्तक नमा कर कहा-`प्रकाश पर लुब्ध पतंग को अन्धकार का प्रणाम है।`

वाक्य तीर की भाँति पैना और घातक था। स्वर संगीत की भाँति कोमल। सौन्दर्य में कवित्व था, वासना की मस्ती में अहंकार। कुमारगिरि इस असाधारण स्त्री का असाधारण अभिवादन सुनकर चौंक -से उठे, उन्होंने उस स्त्री की ओर ध्यान से देखा। स्त्री को देखकर वे चकित हो गये, अपने जीवन में उन्होंने इतनी सुन्दर स्त्री न देखी थी। स्त्री के उस वाक्य का उत्तर देना उन्होंने उचित न समझा, पुरुष से उन्होंने कहा-`अपने अतिथियों का परिचय पाने का मुझको अधिकार प्राप्त है?`

पुरुष ने उत्तर दिया -"भगवन् ! इस दास का नाम बीजगुप्त है और वह पाटलिपुत्र का एक सामन्त है, और वह स्त्री पाटलिपुत्र की सर्वसुन्दरी नर्तकी चित्रलेखा है।"

"बीजगुप्त और चित्रलेखा !" इस बार कुमारगिरि चित्रलेखा की ओर मुड़े-"नर्तकी चित्रलेखा, तुम्हारे कवित्व की कर्कशता पर उन्माद का आवरण है, तुम्हारे विष को तुम्हारा सौन्दर्य छिपाये हुए है। तुम मेरी अतिथि हो और तुमने मेरी अभ्यर्थना की है। आशीर्वाद देना मेरा धर्म है, भगवान तुम्हें सुमति प्रदान करें।"[1]

प्रस्तुत कथोपकथन की संस्कृतनिष्ठ भाषा ही युग एवं पात्रों के अनुकूल नहीं है वरन् 'हिन्दी साहित्य कोशकार'[2] के अनुसार उनके बोलने का ढंग, भाषा का अलंकरण एवं शैली का विशिष्ट रूप उनकी प्रकृति को प्रत्यक्ष रूप में प्रकट कर देता है। चित्रलेखा का एक ही वाक्य उसके प्रत्युत्पन्नमतित्व को प्रकट कर देता है और यह सिद्ध हो जाता है कि वह एक विदुषी स्त्री है। इसी प्रकार बीजगुप्त के कथन उसकी वाग्विदग्धता, स्वाभिमान एवं विनम्रता पूर्ण व्यक्तित्व को एकदम अलग स्थापित कर देते हैं और कुमारगिरि के शब्द उसके ज्ञान-गरिमा एवं साधना परिवेष्ठित दर्प को उद्घाटित कर देते हैं। तीनों पात्रों का वार्तालाप उनके उच्च मानसिक एवं सामाजिक स्तर को तो स्पष्ट कर ही देता है, उनके व्यक्तित्व की पृथक्-पृथक विशेषताओं का प्रकाशन भी इसके द्वारा हो गया है।

'भूले बिसरे चित्र' की छिनकी निम्न वर्ग की एक घरेलू नौकरानी के रूप में चित्रित की गयी है और मुंशी शिवलाल भी कम पढ़े-लिखे एक सामान्य अर्जीनवीस ही हैं, इन दोनों के वार्तालाप में इतनी स्वाभाविकता है कि वह पूर्णतया एक यथार्थ घटना के रूप में हमारी आँखों के सामने उपस्थित हो जाता है देखिए -

"काहे ~~छो~~ हो तबियत तो ठीक आय न ? चूल्हा बुझ गा, ऐसा लगता है खिचड़ी

1- चित्रलेखा- पृ० 28-29

2- "कथोपकथन, कथनोपकथन- कथासाहित्य और नाटक का एक तत्व जो पात्रों को जीवन्त रूप में उपस्थित करते हुए उनकी प्रकृति को प्रत्यक्ष रूप में प्रकट करता है। यह कार्य कथोपकथन, संलाप या वार्तालाप में प्रयुक्त शब्दों से ही नहीं, उनके स्वराघात या लहजे, लय और प्रवाह, शैली, अनुरंजकता और अलंकरण, सभी के सम्मिलित प्रभाव से सम्पन्न होता है।"

- हिन्दी साहित्य कोश, पृष्ठ-187

माँ उबालो नहीं आया। तौन आलस करें से तो काम नाहीं चली। उठो चूल्हा जलाओ चलिके। खिचड़ी खायके फिर तानके सोएब।"

मुंशी शिवलाल ने रजाई के नीचे से ही कहा, "अरी तू चूल्हा फूँक दे, जब खिचड़ी हो जाए तब बतलाना, मैं उतारकर खा लूँगा। अभी उठने की तबीयत नहीं होती।"

राम-राम। हम कच्ची रसोइयाँ माँ कैसे जाई? कलप-वास कर रहे हो तौन धरम-करम का तो खयाल राखो। चौका माँ हमरे जाँय से चौका छूत हुइ जइहै न।"

"हो भी जाने दे, मैं तो खाना बनाते-बनाते आजीज़ आ गया हूँ। राधे की बीबी या उसकी कोई बहू आ जाती, तो वह भी न हुआ। देख, खिचड़ी बनाके और थाली में परोस के मुझे बुला लेना। इस वक्त आने की जरा भी तबीयत नहीं हो रही। आज सरदी एकाएक बढ़ गई है।"

मुंशी शिवलाल की बात सुनकर छिनकी सन्नाटे में आ गई, "यू का कहि रहे हो? तुम हमार बनाई कच्ची रसोई कैसे खइहो? हम रात माँ तुम्हरे बरे पूरी-साग तो बनाय देइत हन; दिन माँ तुम बनाय लीन करो। तौन अगर रसोई बनवावे माँ अलसाय रहे हो तो दूधै पी लेव। काल दुपहरिया माँ बनाय लीन्हेव।"

वह मुंशी शिवलाल ने कड़े स्वर में कहा, नहीं मुझे बड़ी जोर की भूख लग रही है और मैं कच्चा खाना ही खाऊँगा। मैं कह रहा हूँ तुझसे, तू खिचड़ी बनाए दे।"

छिनकी की आँखों में आँसू आ गए, "तुम्हारे हाथ जोड़ित हन, ई पाप हमसे न कराओ - हम चौका माँ न घुसब। तुम्हार परलोक हमरे हाथ न बिगड़े।"

मुंशी शिवलाल को क्रोध आ गया, उन्होंने उठकर छिनकी के गाल पर एक तमाचा मारा, "बड़ी आई है परलोक की बच्ची, हरामज़ादी कहीं की। मैं कहता हूँ कि खिचड़ी बना जाकर।" और मुंशी शिवलाल फिर लिहाफ़ ओढ़कर लेट गए।

छिनकी चुपचाप आँसू बहाते हुए चौके में घुसी। उसने चूल्हा फूँकना आरम्भ किया। वह चूल्हा फूँकती जाती थी और कहती जाती थी, "हे गंगा मइया। तुम हमार साच्छी हो कि हम इनकेर धरम नाहीं लीन। इनकेर अक्किल बौराय गई है, तौन इनकेर पाप छमा करो। रसोई बनाय के इन्हें खिलाई तो इनकेर धरम जाय, और न बनाई तो ई भूखन कलपैं और हम पर मार पड़ै ऊपर से।"[1]

1- भूले बिसरे चित्र- पृ० 118-19

इस कथोपकथन में दोनों पात्रों कीवैयक्तिकता की पूर्णतया रक्षा की गयी है। अपढ़ लोगों की धर्मभीरुता एवं अंधविश्वास से युक्त छिनकी को शिवलाल के प्रति इतनी ममता इसलिए है क्योंकि वह नौकरानी होते हुए भी शिवलाल की सर्वस्व है। मुंशी शिवलाल का व्यवहार भी निम्न मध्यवर्ग के लोगों की तरह है। औरत को मारना गाली देना इस वर्ग के लिए सामान्य सी बात है। उपर्युक्त दोनों उदाहरणों से स्पष्ट हो जाता है कि वर्मा जी के उपन्यासों में कथोपकथन पात्रानुकूल होने के कारण अत्यंत स्वाभाविक है क्योंकि वह वर्ग, व्यक्ति और पात्रों के स्वभाव एवं स्तर के अनुकूल हैं। इसी कारण उनमें असंगति एवं अनौचित्य दोष भी नहीं आने पाया है।

कथोपकथन की स्वाभाविकता के लिए एक अन्य अनिवार्य कसौटी है कि वह भावों के अनुरूप योजित हों। घटनाओं के विशिष्ट अनुक्रम में पात्रों के विशेष भाव-अनुभाव के अनुरूप कथोपकथन का रूप परिवर्तित होना भी आवश्यक है। भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में फँसे पात्रों की मनोगत भावनाओं को समझकर उसके अनुरूप कथोपकथन की सर्जना करना वर्मा जी की विशेषता है। पात्र के भावों के अनुसार, उसकी वाणी में कठोरता एवं कोमलता, सरसता अथवा रुक्षता लाने का कथाकार ने प्रयास किया है। चित्रलेखा और बीजगुप्त एक दूसरे को अत्यधिक प्रेम करते हैं किन्तु चित्रलेखा और बीजगुप्त एक दूसरे को अत्यधिक प्रेम करते हैं किन्तु चित्रलेखा और कुमारगिरि के वार्तालाप से बीजगुप्त को चित्रलेखा के मन में कुमारगिरि के प्रति आकर्षण उत्पन्न होने का आभास हो जाता है। चित्रलेखा कुमारगिरि के व्यक्तित्व से आकृष्ट अवश्य है, किन्तु उसे इस आकर्षण के रूप का स्पष्ट आभास नहीं हो सका है। इस प्रसंग में बीजगुप्त और चित्रलेखा का प्रेमपूर्ण वार्तालाप हृदय की सच्चाई को उजागत कर देता है -

शयन के पहले बीजगुप्त ने कहा -"चित्रलेखा ?"

चित्रलेखा ने उत्तर दिया - "प्रियतम!"

बीजगुप्त ने एक ठण्डी श्वास लेकर कहा-"हृदय पर एक प्रकार का भार-सा मालूम होता है। ऐसा प्रतीत हो रहा है कि मानो हम दोनों के जीवन पर दु:ख के बादल मँडरा रहे हैं। चित्रलेखा! कुमारगिरि योगी है और संभवत: उसमें आकर्षण-शक्ति भी है।

चित्रलेखा का मुख एक क्षण के लिए पीला पड़ गया ; पर उसने सम्हलकर उत्तर दिया -"प्रियतम! कुमारगिरि योगी है और मूर्ख है। उसकी आत्मा मर चुकी है।"

चित्रलेखा ने बीजगुप्त को और अपने को धोखा देने का प्रयत्न किया। उसने फिर कहा -"कुमारगिरि निर्जन का निवासी है और हम दोनों कर्मक्षेत्र के अभिनेता हैं। कुमारगिरि

ने वासनाओं का हनन कर दिया है और हम दोनों वासनाओं पर विश्वास करते हैं। कुमारगिरि के जीवन का लक्ष्य है कल्पना का शून्य और हम दोनों के जीवन का लक्ष्य है मस्ती का पागलपन। प्रियतम! संसार में कोई भी व्यक्ति हम दोनों के बीच में नहीं आ सकता।"

बीजगुप्त का मुख प्रसन्नता से चमक उठा -"भगवान् ऐसा ही करे।"

चित्रलेखा ने बीजगुप्त को धोखा दे दिया ; पर वह अपने को धोखा न दे सकी, उसने मन-ही-मन कहा-"पर कुमारगिरि सुन्दर अवश्य है।"[1]

उपर्युक्त कथोपकथन में एक और बीजगुप्त की आशंका व्यक्त हुई है वहीं चित्रलेखा के शब्द अत्यंत प्रेमपूर्ण होकर भी उसके छल को बड़ी ही स्वाभाविक रीति से प्रकट कर देते हैं। 'रेखा' उपन्यास का एक प्रभावेशयुक्त संवाद उल्लेखनीय है। प्रोफेसर प्रभाशंकर एक शोध-निर्देशक के रूप में अपनी छात्रा रेखा के पर्याप्त निकट आ जाते हैं, किन्तु एक सामान्य प्रेमी की भाँति अपनी मनोभावना व्यक्त करना तो उन्हें शोभा नहीं देता। उनकी भावना को उपन्यासकार ने बड़े संयत एवं विवेकपूर्ण ढंग से उद्घाटित कर दिया है -

"मैंने निबंध टाइप कराके ऑफिस में जमा करा दिया है सर! एक कापी आपके लिए लेती आई हूँ।"

प्रभाशंकर ने अपने अनजाने ही एक ठण्डा निःश्वास छोड़ा, "निबंध पूरा हो गया है रेखा- मेरी बधाई! लेकिन शायद इस निबंध के साथ मेरे जीवन की सुषमा के वे क्षण भी समाप्त हो गए जो इधर अनायास ही कुछ दिनों के लिए मुझे प्राप्त हो गए थे।"

रेखा ने प्रभाशंकर के मुख को अब ध्यान से देखा। एक असीम निराशाजनित वेदना की छाया दिखी उनके मुख पर। वह करुणा से अभिभूत हो गई, "यह क्या कह रहे हैं आप? मैंने तो अब तक आपका अमूल्य समय ही नष्ट किया अपने हित के लिए। आप अब अपना निजी काम कर सकेंगे जो शायद अधिक उपयोगी होगा - ज्ञान के क्षेत्र में, आपकी ख्याति के लिए।"

"कुछ समय तक प्रभाशंकर एकटक रेखा को देखते रहे, फिर उन्होंने उदासी से भीगी हुई आवाज में कहा, "तुम नहीं समझ पाओगी रेखा! यह समस्त ज्ञान, यह समस्त पाण्डित्य, यह समस्त ख्याति - यह सब एक छलना और भुलावा है, इधर कुछ दिनों में मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा हूँ। मनुष्य के जीवन की वास्तविक निधि है भावना। आज तक मुझे किसी ने

1- चित्रलेखा- पृ० 33

अपना नहीं समझा, मैं किसी को अपना नहीं समझ सका; कितनी बड़ी विडम्बना है, जबकि हरेक आदमी मुझे भाग्यशाली समझता है, सफल समझता है।'[1]

वर्मा जी के उपन्यासों में प्रेमी-प्रेमिका पति-पत्नी के प्रेमालाप कहीं भी अत्यधिक लम्बे एवं हल्के नहीं रहे हैं। प्रणय-निवेदन बड़े ही संयत एवं लाक्षणिक शब्दों में करवाकर उपन्यासकार प्रणयी-युगल एवं पति-पत्नी के भावों की अभिव्यक्ति करवा देने में सफल हुआ है, साथ ही इन संवादों में माधुर्य युक्त भाषा का प्रयोग हृदय की कोमलता एवं गहन भावना को बड़ी ही स्वाभाविकता से प्रकट कर देता है।

प्रेम के विपरीत क्रोध की अवस्था में किए गए संलापों में तीक्ष्णता, उत्तेजना एवं ओज का प्राधान्य दृष्टिगत होता है, क्रोधावेश में आकर पात्र एकाध गालियों का प्रयोग भी कर जाते हैं किन्तु कहीं भी वर्मा जी ने बहुत भद्दी एवं भोंडी गालियों का प्रयोग अपने पात्रों से नहीं करवाया है। 'सबहिं नचावत राम गोसाईं' से एक उद्धरण द्रष्टव्य है। सेठ राधेश्याम अपने कार्य से रिश्वत के रूप में एक हीरे का सेट जबरसिंह की पत्नी को भेंट करवाते हैं, किन्तु स्वाभिमानिनी धनवन्तकुँवर उसे लेने से इन्कार कर देती है, इस प्रसंग में मंत्री जबरसिंह एवं उनकी पत्नी का संवाद देखिए -

'सेठ राधेश्याम अभी आए थे। कह रहे थे कि यह सेट तुम्हें भेंट किया जा चुका है, तो वह इसे अपने पास नहीं रखेंगे - और मुझे दे गए हैं कि तुम्हें दे दूँ। एक लाख रुपये का है यह और तुम इसे ठुकराकर चली आईं। अजीब औरत हो - भला इतनी भी तुनुक-मिज़ाजी क्या कि ज़रा-ज़रा-सी बात पर नाराज हो जाओ।'

धनवन्तकुँवर बोलीं, 'यह रिश्वत का माल तुम्हें ही मुबारक हो। इसके पीछे कितना अपमान है, कितनी ज़लालत है, उसे देखने वाली तुम्हारी आँखें फूट चुकी हैं। सैकड़ों किसानों का गला काटकर तुम्हारे भाग्य में नरक जाना ही बदा है।'

जबरसिंह ने कड़े स्वर में कहा, 'कौन साला कहता है कि मैंने किसानों का गला काटा है? राधेश्याम नेवह जमीन खुद किसानों से उसकी उचित कीमत देकर खरीद ली है, मैंने तो इसमें कुछ करने से इन्कार कर दियाथा।' फिर अपना स्वर कुछ मुलायम बनाते हुए उन्होंने कहा, 'सेठानी ने तुमसे बहुत-बहुत माफी माँगी है। ~~कुछ कुछ~~ उन्हें तुम कुछ गलत समझ गईं। तो यह सेट ले लो।'

1- रेखा- पृ० 41

" मैं यह पाप की सौगात नहीं लूँगी, किसी हालत में नहीं लूँगी। उस हरामज़ादी ने मेरा इतना अपमान किया है।"

जबरसिंह ने रुखाई के साथ कहा ," आती हुई लक्ष्मी को ठुकराने वाला अभिशप्त होता है - तुम भी अभिशप्त है।"

ठकुराइन धनवन्तकुँवर गरज उठीं,"खबरदार जो अब एक बात भी जबान से निकाली। तुम स्वाभिमानी ठाकुर नहीं, चमार हो। इन हरामज़ादों से मुझे कुछ नहीं लेना-देना।"[1]

प्रस्तुत संवाद में ध्यान देने योग्य बात यह है कि क्रोध के इन क्षणों में क्रोधापी एवं राजकुल की होने के कारण धनवन्तकुँवर के कथन अधिक तीक्ष्ण एवं व्यंग्यात्मक हैं जबकि जबरसिंह के शब्दों में एक मंत्री के गुणों के अनुकूल गुस्सा होने पर भी कुछ सम्हलकर बोलने की प्रवृत्ति दिखती है। इसी प्रकार 'भूले बिसरे चित्र' का एक क्रोधपूर्ण वार्तालाप देखिए -

"नहीं, मैं न खाना खाऊँगा, न पानी पिऊँगा, भूखा-प्यासा रहकर यहाँ अपने प्राण दे दूँगा। दादा की जान इसने ले ली, मैं भी इसी के हाथ मरूँगा। भोगे अपनी तहसीलदारी, भोगे अपना राज-पाट, अपना अफ़सरपना। नरक में भी जगह न मिलेगी इसे।"

छिनकी से न रहा गया। वह बढ़कर मुंशी राधेलाल के सामने पहुँची,"परान देयँ का होय तो अब ही दै देव, ई गाली-गलौज से परान न जाई। ईहे सब गुनन से तो आज यू दिन देखें का पड़ रहा है। बड़े सरमदार और मरद आओ तो देव परान ; हमहूँ देखी कैसे परान देत हौ।"

राधेलाल की पत्नी को अब अनुभव हुआ कि बात बहुत अधिक बिगड़ गई है - बिगड़ ही नहीं गई, अब तो सब कुछ समाप्त हो गया है। मुंशी राधेलाल जोर-जोर से चिल्लाकर छिनकी को गालियाँ देने लगे थे। आँखों के आँसू पोंछते हुए राधेलाल की पत्नी ने कहा, "काहे रे छिनकी, अब इतनी हिम्मत हुई गई है कि छोटे मालिक से इस तरह जबान लड़ावे है।"

"काहे इनकेर कौनो डर आय ? इनकेर दिया का हम खावा-पिवा-पहना आय। हमरे बिटवा का गरियाय रहे हैं तौन नाहीं रुकती हौ। मुड़चिढ़ापन करिकें ज्वाला की छाती पर मूँग दला चाहत है। तौन यू सब न होई। घर-दुआर है, वहैं जायके रहैं का तो कहिस है ज्वाला। तो कौन बेजा बात कहिस है ? जमीन खरीद दीन्हिस है, हर तरह से मदद करत है। तहू पर राजी नहीं है। ऊकेर परानै लेयँ पर तुल गए हैं। तौन ऊ सब तो

1- सबहिं नचावत राम गोसाईं - पृ० 227

न होई।'[1]

यहाँ पर भी राधेलाल और छिनकी का संवाद दोनों के क्रोध एवं रोषपूर्ण उद्गारों को अत्यंत उपयुक्त ढंग से व्यक्त कर देता है। सर्वाधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि ये कथोपकथन भाव एवं विचार के अनुकूल तो हैं ही, पात्र के स्तर के उपयुक्त भी हैं, इसी कारण इनमें अत्यधिक सहजता एवं स्वाभाविकता है। इसी प्रकार दुख,क्लेश एवं पश्चाताप की स्थिति में पात्रों के संवाद पाठकों के हृदय को विचलित कर देने एवं पीड़ा से भर देने में पूर्ण सक्षम रहे हैं। उनके उपन्यासों में मृत्यु के पूर्व की हृदय-द्रावक स्थिति का बड़ा ही मार्मिक एवं हृदय-स्पर्शी चित्रण पात्रों के वार्तालाप के माध्यम से हुआ है। आसन्न मृत्यु की स्थिति में पात्रों की मनोव्यथा एवं पीड़ा का बड़ा ही करुण अंकन उनके कथनों में मिलता है। 'तीनवर्ष' में सरोज की मृत्यु के पूर्व उसकी मानसिक पीड़ा का बड़ा ही मर्मस्पर्शी चित्रण उपन्यासकार ने उसके कथनों के द्वारा करवाया है।[2] उसका एक-एक वाक्य उसकी अंतिम अभिलाषा,अतृप्त मनोकामना एवं हार्दिक व्यथा को उड़ेलकर रख देता है। प्रभुदयाल एवं गंगाप्रसाद[3], तथा जीवनराम[4] की मृत्यु के समय के संवाद भी इस दृष्टि से देखे जा सकते हैं।

उपर्युक्त विवेचन यह प्रमाणित कर देता है कि वर्मा जी के उपन्यासों के कथोपकथन पात्रानुकूल एवं भावानुकूल होने के कारण अत्यधिक स्वाभाविक बन पड़े हैं। पात्रों के मानसिक सामाजिक एवं शैक्षणिक स्तर के उपयुक्त होने के कारण एवं विशेष परिस्थिति में पात्रों की विशेष मानसिक स्थिति के अनकूल होने के कारण उनमेंपर्याप्त विश्वसनीयता बनी रहती है।

<u>नाटकीयता :-</u> उपन्यास के कथोपकथन में नाटकीयता के गुण को अत्यंत आवश्यक माना गया है। कथोपकथन की क्षिप्रता, सांकेतिकता एवं प्रभावशालिता उन्हें नाटकीयता प्रदान करती है, किन्तु इनमें स्वाभाविकता एवं यथार्थता का होना भी आवश्यक है। कथोपकथन को प्रभावशाली एवं रोचक बनाने के लिए उपन्यासकार से अपेक्षा की जाती है कि वह कथोपकथन को रमणीय एवं नाटकीय बनाये, किन्तु ऐसा करते समय उसे इस बात का ध्यान रखना चाहिए

1- भूले बिसरे चित्र- पृ० 226

2- तीन वर्ष- पृ० 245,246,248,250,252-253

3- भूले बिसरे चित्र- पृष्ठ-66,67 एवं 600

4- वह फिर नहीं आई- पृष्ठ-92-93

कि संवादों में कृत्रिमता एवं अवास्तविकता न आने पाये। अतएव उपन्यासकार को संवाद में नाटकीयता एवं वास्तविकता के बीच संतुलन बनाए रखने की कला पर पूर्ण अधिकार होना चाहिए। उपन्यासों में पात्रों की कायिक चेष्टाओं, मुखमुद्राओं एवं भाव-भंगिमाओं की अभिव्यक्ति करके उपन्यासकार संवादों में अभिनयात्मकता का समावेश करते हैं, साथ ही पात्रों के संक्षिप्त, चुटीले एवं पैने कथन को अधिक नाटकीयता एवं रमणीयता प्रदान करते हैं।

वर्मा जी के उपन्यासों में पात्रों के वार्तालाप के साथ-साथ उनकी चेष्टाओं एवं क्रिया-कलापों का विस्तृत विवेचन करने की प्रवृत्ति अत्यधिक दृष्टिगत होती है, कहीं-कहीं इन चेष्टाओं का यथोचित एवं संयमित निर्देश वार्तालाप को नाटकीय बनाने में प्रभूत सहायता प्रदान करता है और कहीं-कहीं पात्रों के वार्तालाप के बीच उपन्यासकार की उपस्थिति अरुचिकर भी प्रतीत होती है। वर्मा जी की इसी त्रुटि पर व्यंग्य करते हुए डॉ० रामविलास शर्मा ने लिखा है -'इस तरह के फिल्मी वाक्य और 'रामनाथ का स्वर तेज होता गया' के स्टेज डायरेक्शन, बाम्बे टॉकीज़ की याद दिलाने के लिए कई जगह मिलेंगे।'[1] इस सम्बंध में हमारा निवेदन यह है कि इस तरह के 'स्टेज डायरेक्शन' उपन्यास के कथोपकथन के लिए सर्वथा त्याज्य नहीं हैं, अपितु उनका समुचित प्रयोग पात्रों के संवाद में प्रभावोत्पादकता एवं स्वाभाविकता का समावेश करता है। हाँ संवादों के बीच उपन्यासकार की लम्बी-लम्बी टिप्पणी पात्रों के अभिनयात्मक वार्तालाप की चारुता को अवश्य नष्ट कर देती हैं।

वर्मा जी के उपन्यासों में कथोपकथन जहाँ अधिक लम्बे एवं दार्शनिकता से भरे नहीं हैं, वहाँ उनकी नाटकीय क्षमता विशेष प्रशंसनीय है। 'चित्रलेखा' में ऐसे लघु, सरस एवं अभिनयात्मक संवाद प्रचुर मात्रा में देखे जा सकते हैं, इनकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि ये अपनी मनोरमता एवं कलात्मकता के कारण स्मरणीय बन गये हैं। बीजगुप्त और चित्रलेखा का एक संवाद द्रष्टव्य है -

'जीवित मृत्यु। नहीं, यह असम्भव है। यौवन का अन्त है एक अज्ञात अन्धकार, और उस अज्ञात अन्धकार के गर्त में क्या छिपा है, वह न तो मैं जानता हूँ, और न उसके जानने की कोई इच्छा ही है। भूत और भविष्य, ये दोनों ही कल्पना की चीजें हैं, जिनसे हमको कोई प्रयोजन नहीं, वर्तमान हमारे सामने है, और वह---'बीजगुप्त रुक गया, शायद वह आगे के शब्दों को ढूँढ़ने लगा था।

1- सीधा सादा रास्ता- ले० रांगेय राघव में डॉ० रामविलास शर्मा की भूमिका- पृ० 17

`और वह उल्लास-विलास है, संसार का सारा सुख है, यौवन का सार है।`--- चित्रलेखा ने हँसते हुए वाक्य पूरा कर दिया। बीजगुप्त ने चित्रलेखा को आलिंगन -पाश में लेकर कहा-` तुम मेरी मादकता हो।`

चित्रलेखा ने उत्तर दिया -`और तुम मेरे उन्माद हो।`[1]

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, वर्मा जी उपन्यासकार के साथ-साथ नाटककार भी हैं और एक कवि के रूप में भी उन्हें बड़ी ख्याति प्राप्त हो चुकी है। `चित्रलेखा` के संवादों की रचना में वर्मा जी के बहुमुखी साहित्यिक व्यक्तित्व ने अपना हार्दिक सहयोग प्रदान किया है। `चित्रलेखा` के अंतिम परिच्छेद का अंतिमांश तो उनके नाटकीय संवादों के लिए विशेष ध्यातव्य है।[2] बीजगुप्त का गृह-त्याग चित्रलेखा का पश्चाताप,बीजगुप्त द्वारा क्षमादान एवं दोनों का पुनर्मिलन नाटकीय स्थितियों एवं रमणीय संवादों से ओतप्रोत है। चित्रलेखा के ही कुछ अन्य स्थल भी इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं - चित्रलेखा-श्वेतांक संवाद[3] चित्रलेखा-बीजगुप्त संवाद[4] और चित्रलेखा-कुमारगिरि संवाद[5]। चित्रलेखा के ऐसे ही सरस एवं नाटकीय संवादों कोब दृष्टि में रखकर एक समीक्षक ने लिखा है -`पात्रों के कथोपकथन कहीं भी विस्तृत या नीरस नहीं हुए। ये संक्षिप्त, नाटकीय प्रभाव रखने वाले, परिस्थिति को स्पष्ट करने वाले परम आकर्षक एवं रुचिकर हैं। वास्तव में इन्हें `चित्रलेखा` का प्राणतत्व कहा जा सकता है। पात्र उपन्यास के पृष्ठों में आकर ऐसे वार्ता करते हैं जैसे नाटक के मंच पर अभिनेता।`[6]

`चित्रलेखा` के अतिरिक्त वर्मा जी के अन्य उपन्यासों के संवादों में भी पर्याप्त नाटकीयता दृष्टिगत होती है। `सामर्थ्य और सीमा,` `सीधी सच्ची बातें` तथा `प्रश्न और मरीचिका` के संवाद प्राय: लम्बे, दार्शनिक एवं राजनीतिक विचार-विमर्श से युक्त एवं कुछ नीरस अवश्य हो गये हैं, तथापि इन उपन्यासों में भी पात्रों की भावुकता के क्षणों के वार्तालाप नाटकीय एवं रमणीय होते हैं। इन उपन्यासों के अतिरिक्त वर्मा जी ने अपने सभी

1- चित्रलेखा- पृ० 10

2- ,, पृ० 172 से 175 तक

3- ,, पृ० 22-23,24-25,56 से 59

4- ,, पृ० 63 से 65, 104-105

5- ,, पृ० 127 -128,132 से 136,153 से 156

6- हिन्दी उपन्यास -शिल्प : बदलते परिप्रेक्ष्य- प्रेम भटनागर-पृष्ठ-233

उपन्यासों में नाटकीय संवादों को स्थान दिया है, विशेषकर 'अपने खिलौने' और 'सबहिं नचावत राम गोसाईं' जैसे हास्य-व्यंग्य युक्त उपन्यासों में नाटकीय संवादों की भरमार है। 'अपने खिलौने' से एक उद्धरण द्रष्टव्य है -

'शैदा, हीरोइन तो तुमने बड़ी खूबसूरत चुनी लेकिन----अभी कच्ची है।'

'धीरे-धीरे पक्की हो जायगी।'-- शैदा ने मुसकराते हुए उत्तर दिया। इस बार वह मीना की ओर घूमा---'मीना जी। फ़िल्म की जिन्दगी मौज-मजे की है, कला की है। कला में और उसे क्या कहते हैं---और वह संजम-तो कला में और संजम में बैर होता है। मेरा ख्याल है, अगर आप एक घूँट व्हिस्की की ले ही लें, तो कोई हर्ज न होगा, वैसे हीरोइनों को शेरी, वरमूथ या अधिक-से-अधिक शैम्पेन से आगे न बढ़ना चाहिए।'

बात मीना से कही गयी थी, उत्तर अन्नपूर्णा ने दिया 'शटअप-यू रास्कल'

अन्नपूर्णा का यह तेवर रामास्वामी को बड़ा पसंद आया, वह ठठाकर हँस पड़ा-'शैदा-शैदा-रास्कल शैदा। यह रास्कल है -- बहुत बड़ा रास्कल है। यू रास्कल शैदा-स्टोरी में वैम्प का पार्ट अब आना ही चाहिए। गज़ब की लुक्स हैं इसमें, जब यह नाराज़ होती है, तो हीरोइन से भी खूबसूरत दिखती है -- पचास हजार का कान्ट्रैक्ट एक साल का देने को तैयार हूँ-- माई डार्लिंग वैम्प। यू रास्कल शैदा।' और रामास्वामी ने अपना ग्लास खाली करके तीसरा ग्लास उठाया।

बात अन्नपूर्णा की बर्दाश्त के बाहर की थी, उसने तीखे स्वर में कहा--'तुम लोग बहुत बड़े स्काउन्ड्रेल्स हो। अगला स्टेशन आने दो- मैं तुम दोनों को पुलिस के हवाले करती हूँ।'

रामास्वामी पर ह्विस्की का रंग जमने लगा था -'ओह! मुझे पुलिस के हवाले करोगी -- यह कहकर कि हम स्काउन्ड्रेल्स हैं, लेकिन माई डार्लिंग वैम्प--हम सब फिल्म वाले स्काउन्ड्रेल्स हैं-- छटे हुए और नम्बरी। इन फिल्मवालों में प्रोड्यूसर-डाइरेक्टर, हीरो-हीरोइन, वैम्प एक्टर्स सभी शामिल हैं। हा-हा-हा!-- दुनिया जानती है। यू रास्कल शैदा। -- ग्लास खत्म करो, अब तो जम रहा है। --तो माई डार्लिंग वैम्प, तुम हम लोगों का कुछ भी नहीं बिगाड़ सकतीं, क्योंकि हम लोगों ने तुम्हारी भतीजी को खरीदा है, एक लाख पर एक साल के लिए। दस हजार पेशगी दिए हैं--हा-हा-हा! --करो शिकायत पुलिस में। शैदा, इन दोनों को एक-एक पेग पिलाना ही चाहिए, न मानें तो ज़बर्दस्ती।'[1]

1- अपने खिलौने- पृ० 170-71

प्रस्तुत संवाद के द्वारा रामास्वामी की कामुकता, शराब पीकर उसका बहकना, अन्नपूर्णा का रोष आदि पूर्णतया सजीव हो उठे हैं, ऐसा प्रतीत होता है मानो हम नाटक का कोई दृश्य ही देख रहे हों। यह संवाद आगे भी दो पृष्ठ तक चलता है जो पूरे रंगमंचीय अभिनय की भाँति हमारे मस्तिष्क पर अपना प्रभाव डालता है। 'चित्रलेखा' और 'अपने खिलौने' के संवादों की भाषा में पर्याप्त भिन्नता है, किन्तु पात्रों के अनुसार उसके रूप बदल जाने की आवश्यकता की ओर उपन्यासकार की सतर्कता इससे स्पष्ट हो जाती है। इस संवाद की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि रामास्वामी का कथन और उसका क्रिया-कलाप स्वयं उस पर व्यंग्य बनकर छा जाता है, फिल्मजगत के कुत्सित अर्थपिशाचों की ओर बड़ा करारा व्यंग्य वर्मा जी ने इस कथोपकथन के द्वारा किया है।

वर्मा जी के उपन्यासों के कुछ स्थलों को यदि छोड़ दिया जाय तो उनके प्राय: सभी उपन्यासों के कथोपकथनों की नाटकीयता असंदिग्ध है, उनका सबसे प्रमुख गुण यह है कि उनमें प्राय: स्वाभाविकता का अभाव नहीं आने पाया है। संवाद में नाटकीयता एवं वास्तविकता का एक साथ निर्वाह कुशल कलाकार की कला की कसौटी है। और इसमें वर्मा जी को उल्लेखनीय सफलता मिली है।

सम्बद्धता :- कथोपकथन का पूर्वाधार सम्बंध नितान्त आवश्यक है, अकारण कथोपकथन का प्रस्तुतीकरण उपन्यास के कलात्मक सौष्ठव को क्षति पहुँचानेवाला होता है। उपन्यासकार के लिए आवश्यक है कि वह या तो कथोपकथन की योजना करने से पूर्व उसकी पूर्वपीठिका तैयार कर ले अथवा कथोपकथन के पश्चात् उसे कथाक्रम में इस प्रकार अनुस्यूत कर दे कि वह कथानक से अलग-थलग न प्रतीत हो।

वर्मा जी के प्राय: सभी उपन्यासों में कथोपकथन -कथानक में आदि से अंत तक अनुस्यूत रहे हैं। वर्मा जी ने राजनीतिक अथवा दार्शनिक वाद-विवाद की अवतारणा करते समय भी यह ध्यान रखने का प्रयत्न किया है कि यह वाद-विवाद प्रसंगानुकूल रहे और कथाक्रम से उसका तारतम्य बना रहे। यह बात दूसरी है कि इस प्रकार के वाद-विवाद लम्बे होने के कारण नीरस हो गये हैं। किन्तु उनका पात्रों एवं कथानक से सम्बंध प्राय: बना रहता है।

एक समीक्षक का विचार है कि कभी-कभी किसी अनुच्छेद के आरम्भ में ही कथोपकथन की योजना की जाती है। ऐसा संवाद कथानक का अंग-रूप ही होना चाहिए।

ऐसा होने पर उसका पूर्वापर सम्बन्ध बना रहेगा ।"[1] वर्मा जी ने अनुच्छेद के प्रारम्भ में ही नहीं कई बार उपन्यास के प्रारम्भ में भी कथोपकथन की अवतारणा की है किन्तु उन्हें ब इस निपुणता एवं कलात्मकता से कथानक से जोड़ा गया है कि वह कथोपकथन, उपन्यास का अनिवार्य एवं महत्वपूर्ण अंग सिद्ध होता है ।

'चित्रलेखा' की 'उपक्रमणिका' एवं 'प्रथम परिच्छेद' दोनों का प्रारम्भ कथोपकथन से हुआ है । उपक्रमणिका का प्रारम्भ होता है -श्वेतांक ने पूछा--"और पाप ?"

महाप्रभु रत्नाम्बर मानों एक गहरी निद्रा से चौंक उठे । उन्होंने श्वेतांक की ओर एक बार बड़े ध्यान से देखा--"पाप ? बड़ा कठिन प्रश्न है वत्स । पर साथ ही बड़ा स्वाभाविक ! तुम पूछते हो पाप क्या है ।"

इसके पश्चात् महाप्रभु रत्नाम्बर पाप के विषय में समुचित समाधान देने में अपनी असमर्थता व्यक्त करते हुए कहते हैं -

"पर श्वेतांक, यदि तुम पाप जानना ही चाहते हो, तो तुम्हें संसार ढूँढ़ना पड़ेगा । इसके लिए यदि तैयार हो, तो सम्भव है, पाप का पता लगा सको ।"[2]

स्मरणीय है कि इसी पाप-पुण्य की समस्या पर उपन्यास की कथा का तानाबाना बुना गया है और पाप का पता लगाने के लिए संसार का जो स्थल चुना गया। वह प्रथम परिच्छेद में प्रकाशित हुआ है ; वहाँ भी पात्रों का वार्तालाप उनके जीवन और उपन्यास की कथा से पूर्णरूपेण सम्बंधित है । उसे जिस प्रकार चित्रलेखा और बीजगुप्त के जीवन से जोड़ा गया है वह वर्मा जी की उपन्यास-कला का सर्वोत्तम निदर्शन है । 'मादकता और उन्माद'[3] चित्रलेखा और बीजगुप्त के ही युवा-जीवन का सार नहीं था, वरन् वर्मा जी की दृष्टि से वह जीवन के कुछ वर्षों में सभी के लिए अनिवार्य है, इनका दमन ही विभिन्न पापों का मूल होता है । जीवन के इसी स्वस्थ उपभोग पर 'चित्रलेखा' की दार्शनिक-पीठिका निर्मित हुई है । इसी प्रकार 'भूले बिसरे चित्र' का प्रारम्भ भी मुंशी शिवलाल और ठाकुर भूपसिंह के वार्तालाप से होता है । मुंशी द्वारा इस्तगासे को पढ़कर सुनाना, उसकी व्याख्या करना

1- हिन्दी उपन्यास कला- डॉ० रामलखन शुक्ल-पृ० 37

2- चित्रलेखा- पृ० 5

3- ,, पृ० 13

तथा ठाकुर भूपसिंह से पैसे ऐंठना आदि उनकी चारित्रिक विशेषताओं और अर्जीनवीस की नौकरी करने की ओर संकेत तो कर ही देता है, साथ ही इस वार्तालाप से मुखरित होनेवाली मैकूलाल महाजन और भूपसिंह की कथा लाला प्रभुदयाल तथा बरजोरसिंह की कथा की पृष्ठभूमि भी तैयार कर देती है ।[1]

उपर्युक्त दोनों उदाहरणों से स्पष्ट हो जाता है कि वर्मा जी के उपन्यासों के कथोपकथन उपन्यास की कथा से पूर्णरूप से जुड़े रहते हैं भले ही वह उपन्यास अथवा उपन्यास के किसी परिच्छेद के प्रारम्भ में ही क्यों न आए हों ।

किसी विशिष्ट दर्शन या सिद्धान्त की विस्तृत व्याख्या करने के लोभ में अथवा अपना आचार्यत्व दिखलाने के लिए कई उपन्यासकार कथोपकथन को कथा से विश्रृंखलित कर देते हैं, ऐसी स्थिति में 'पात्र नेता बन जाते हैं या 'हिज़ मास्टर्ज़ वॉयस' और अपने साधारणत्व को खोकर वे पाठकों से दूर हो जाते हैं ।[2] वर्मा जी के उपन्यासों में सिद्धान्त चर्चा या दार्शनिक वाद-विवाद न हुए हों और वह कहीं-कहीं अत्यधिक लम्बे न खिंच गये हों, ऐसा नहीं है ; सामर्थ्य और ~~समा~~ सीमा, सीधीसच्ची बातें, प्रश्न और मरीचिका' एवं कहीं-कहीं 'चित्रलेखा' 'तीनवर्ष' आदि में ऐसे अनेक स्थल मिल जाते हैं । कहीं-कहीं यह वाद-विवाद नीरस एवं बोझिल भी हो गये हैं, किन्तु उनकी अवतारणा आकस्मिक एवं अकारण नहीं की गई है । उपन्यास के घटनाक्रम में कहीं न कहीं उनका सूत्र बँधा रहता है । 'तीन वर्ष' का ही एक उदाहरण लें- इस उपन्यास के सातवें परिच्छेद का प्रारम्भ कुछ विद्यार्थी मित्रों के प्रेम और विवाह विषयक वाद-विवाद से होता है, और यह वाद-विवाद लगभग 6 पृष्ठों में चलता है । इसमें भी अजित के कथन तो बहुत लम्बे-चौड़े हैं, कभी-कभी ऐसा प्रश्न उठने लगता है कि उपन्यास के पिछले अंश से इसका क्या सम्बंध है ? किन्तु बाद में रमेश और प्रभा के प्रसंग से उसे जोड़कर कथाकार ने उसकी सार्थकता सिद्ध कर दी है । इसके अतिरिक्त यह वाद-विवाद पढ़ने-लिखने वाले लड़कों की बहस-मुबाहिसे की प्रवृत्ति का द्योतन तो करता ही है । अत: इसे कथा से असम्पृक्त कदापि नहीं कहा जा सकता ।

1- भूले बिसरे चित्र- पृ० 1 से 4

2- प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों की शिल्पविधि- डॉ० सत्यपाल चुघ, पृ० 104

जहाँ तक 'सीधी सच्ची बातें', 'सामर्थ्य और सीमा' तथा 'प्रश्न और मरीचिका' के लम्बे-लम्बे वार्तालापों की बात है, वहाँ भी प्राय: वार्तालाप तत्कालीन देशकाल के महत्वपूर्ण प्रश्नों (Current Topics) को लेकर हुए हैं, अथवा सृष्टि के शाश्वत सत्य से जुड़े हैं और उनका किसी न किसी रूप में कथा से सम्बंध बना रहता है अत: यह नि:संकोच कहा जा सकता है कि वर्मा जी के उपन्यासों के कथोपकथनों में प्राय: श्रृंखलाबद्धता का गुण मिलता है, एकाधिक अपवाद ढूँढ़ निकालना कलाकार की स्वतंत्रता पर प्रहार करना है ।

<u>रोचकता एवं सरसता</u> :- वर्मा जी की रोचक भाषा-शैली के कारण उनके उपन्यासों के कथोपकथन अत्यधिक रोचक और सरस बन पड़े हैं । उनके उपन्यासों में उपरि-चर्चित कुछ लम्बे कथोपकथनों को छोड़कर प्राय: कथोपकथनों का रोचक, रमणीय एवं सरस होना एक ऐसा गुण है जो वर्मा जी के उपन्यासों की लोकप्रियता के कारणों में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका रखता है ।

हिन्दी के शीर्षस्थ विद्वान डॉ० नगेन्द्र का कथन है -"संवाद पात्रानुकूल एवं भावानुकूल होते हुए भी तब तक सरस, रसात्मक एवं रमणीय न होगा, जब तक उसमें रोचकता न हो । संवाद में रोचकता लाने के लिए तीन तत्वों प्रत्युत्पन्नमति, हाजिरजवाबी, सौजन्य etiquette और संगति का उसमें होना अनिवार्य माना गया है ।"[1]

वर्मा जी के उपन्यासों के पात्र अधिकांशत: उच्चवर्गीय, सुशिक्षित एवं बौद्धिक होने के कारण प्रत्युत्पन्नमति हैं । वर्मा जी स्वयं अपने व्यक्तिगत जीवन में अपनी हाजिरजवाबी के लिए प्रसिद्ध हैं । अपने इस गुण का उन्होंने अपने औपन्यासिक चरित्रों के वार्तालाप में खुलकर प्रयोग किया है । उनके व्यवहारकुशल पात्र प्रत्येक स्थिति में अपने वाक्चातुर्य के कारण अपना मार्ग साफ कर लेते हैं, अपने विपक्षी को अपनी बातों से छकाने अथवा उसे अपने उत्तर से निरुत्तर कर देने में उन्हें महारत हासिल रहती है । इस दृष्टि से कुमारगिरि, बीजगुप्त और चित्रलेखा;[2] अजित-लीला[3], लाल रिपुदमनसिंह और गंगाप्रसाद[4], मीर जाफरअली और गंगाप्रसाद[5], सोमेश्वर और रेखा[6] आदि के वार्तालाप को पात्रों की हाजिरजवाबी के थोड़े

1- साकेत- एक अध्ययन, डॉ० नगेन्द्र, पृष्ठ-136

2- चित्रलेखा- पृ० 28-29

3- तीन वर्ष- पृ० 65,69,80

4- भूले बिसरे चित्र- पृ० 262

5- ,, पृ० 280

6- रेखा- पृ० 87-88

से उदाहरणों के रूप में रखा जा सकता है । 'सीधी सच्ची बातें' का एक वार्तालाप द्रष्टव्य है जिसमें बोलनेवालों की व्यंग्य-क्षमता का अच्छा परिचय मिलता है -

जमशेद कावसजी ने हँसते हुए कहा, "खूब चिमन सेठ । देखो जमील अहमद, हमारे चिमन सेठ बड़े आदमी हैं, इनसे लड़कर कोई पार नहीं पा सका । महात्मा गाँधी के असली चेले हैं ।"

जमील मुस्कराया, "जी हाँ, जी हाँ, लेकिन इतने उतावलेपन से काम नहीं चलेगा कावस जी सेठ । चिमन सेठ को भी एक पेग दीजिए, तब बातचीत आगे बढ़े ।"

चिमनलाल ने बिगड़कर कहा, "ज़रा तमीज़ से बात करो । सब लोग जानते हैं कि मैं शराब नहीं पीता ।"

जमील ने बड़े इत्मीनान के साथ अपनी आँखें बन्द करते हुए कहा, "इन्सान के लहू में शराब से ज्यादा नशा होता है । मैं गलत तो नहीं कहता चिमन सेठ । हाँ, तो बढ़ाइये अपनी बात कावसजी सेठ ।"[1]

स्मरणीय है कि सेठ चिमनलाल एक मिलमालिक हैं जो कुछ मजदूरों की छँटनी करना चाहते हैं और जमील अहमद एक मजदूर नेता है । जमील अपने कथन से चिमनलाल पर भीषण व्यंग्य-प्रहार करता है, साथ ही अपनी तात्कालिक बुद्धि का परिचय भी देता है । इस प्रकार पात्रों के प्रत्युत्पन्नमतित्वपूर्ण वार्तालाप से जहाँ एक ओर उनकी वैयक्तिक वाक्चातुरी एवं बौद्धिक क्षमता का ज्ञान पाठक को होता है, वहाँ दूसरी ओर ऐसे वार्तालाप उपन्यास को रोचक बनाने में अपनी महनीय भूमिका का निर्वाह करते हैं । इस दृष्टि से चित्रलेखा के नपे-तुले, वाग्विदग्धता एवं बुद्धिमत्तापूर्ण कथन उसे वर्मा जी के औपन्यासिक जगत के पात्रों में सर्वाग्रणी स्थापित कर देते हैं ।

प्रत्युत्पन्नमति के साथ वर्मा जी ने शिष्टाचार और संगति या औचित्य का सदैव ध्यान रखा है । उनके पात्र वार्तालाप करते समय पारस्परिक व्यवहार-सौजन्य का पूर्ण उपयोग करते देखे जाते हैं । ऐतिहासिक पृष्ठभूमि-आधारित उपन्यासों में शिष्टाचार का विशेष ध्यान रखा ही गया है, आधुनिक उपन्यासों के पात्र भी अपने उद्धत व्यवहार के द्वारा किसी को ठेस नहीं पहुँचाते हैं । शिष्टाचार एवं सौजन्य के कारण ही गंगाप्रसाद अपनी मेजबान की अभ्यर्थना करते हुए कहता है- "संतो बीबी की बड़ी कृपा है मुझ पर ।

1- सीधी सच्ची बातें - पृ० 84-85

मेरी इतनी खोजखबर रखी है आपने । मेरे नौकर ने बतलाया कि राधाकिशन भी मुझे दो दफा पूछ गए ।"[1] रिपुदमनसिंह अपनी भाभी को 'भाभी सरकार' एवं राजा धरनीधरनसिंह अपनी पत्नी को 'नैपाली रानी' के सम्बोधन से संबोधित करते हैं ।[2] यहाँ तक कि एकतरफ से कुछ अक्खड़ स्वभाव के रामलोचन को भी अपने अफसर से बात करने के ढंग का पूरा-पूरा ज्ञान है ।

ज्ञानेन्द्रनाथ मिश्र ने रामलोचन के कन्धे पर हाथ रखकर कहा,"तुम्हारा नाम शायद रामलोचन पाण्डे है, सर्किल इन्सपेक्टर हो ।"

"यस सर ।" रामलोचन बोला ।

"इस आदमी को जानते हो ?" उन्होंने अन्दर राधेश्याम की ओर संकेत किया ।

"यस सर । बहुत बड़ा इंडस्ट्रियलिस्ट है ।"

"और बहुत बड़ा ब्लैक मार्केटियर भी ।" ज्ञानेन्द्रनाथ बोले ।

"यस सर- नम्बरी स्काउंड्रेल है, साथ ही मंत्री जी का बुहत बड़ा दोस्त है ।"

"तो तुमने उसे ड्राइंगरूम में रोककर मुझे मंत्री जी के पास क्यों भेजा ?

" सर आप कानून के रक्षक हैं, यह कानून का तोड़क है । इसे तो जेल में होना चाहिए ।"

"तुम्हें कोई काम तो नहीं है ? मेरे साथ चल सकते हो ? ज्ञानेन्द्रनाथ ने पूछा ।

"मुझे कोई काम नहीं है सर- मैं तो आपका मातहत हूँ ।"[3] इसी प्रकार आधुनिका रेवा मदान भी अपने ननदोई से बात करते समय सामाजिक शिष्टाचार के विवेक का परिचय देती है -

"और बड़े भाग कि ननदोई जी के दर्शन हुए । मैं कितनी प्रतीक्षा कर रही थी । विश्व इतिहास के सृजन में रत कितने सुन्दर लेख । रोमांच और पुलक हो जाता है उन्हें पढ़कर । विश्व के पूर्वांचल की यात्रा, सौन्दर्य से साक्षात्कार ।" और अपना उपन्यास बन्द करके वह उठ खड़ी हुई,"बैठो । बताओ किस-किस देश में तुम घूमे, कहाँ-कहाँ की सुन्दरियों से तुम मिले ?"[4] द्रष्टव्य है कि रेवा शिष्टाचार के साथ- साथ ननदोई से मजाक के

1- भूले बिसरे चित्र- पृ० 268

2- ,, ,, पृ० 290

3- सबहिं नचावत राम गोसाईं- पृ० 142-143

4- प्रश्न और मरीचिका- पृ० 278

रिश्ते के अनुसार हँसी-मज़ाक करने से भी नहीं चूकती । इसी प्रकार वर्मा जी के उपन्यासों के पात्र हास्य-विनोद के अवसर का पूरा उपयोग करके अपने वार्तालाप को रोचकता से भर देते हैं ।

जहाँ तक 'संगति' का प्रश्न है, वर्मा जी के उपन्यासों के कथोपकथन में 'स्वाभाविकता' की चर्चा करते समय हम स्पष्ट कर चुके हैं कि संवादों में पात्रानुकूलता एवं भावानुकूलता होने के कारण असंगति नहीं आ पायी है । प्रत्युत्पन्नमतित्व, सौजन्य और संगति के समुचित समावेश ने वर्मा जी के कथोपकथनों को पर्याप्त रोचकता एवं रमणीयता प्रदान की है । यों तो वर्मा जी के सभी उपन्यासों में पात्रों के हास्य-विनोद, व्यंग्य,वाग्वैदग्ध एवं प्रत्युत्पन्नमतित्व से युक्त संवादों के कारण रोचकता बनी रहती है, तथापि सबहिं नचावत राम गोसाईं' 'अपने खिलौने' एवं 'चित्रलेखा' के संवाद कई बार कथा से अलग भी अपने में अत्यधिक रोचक एवं आनंददायी बन पड़े हैं ।'चित्रलेखा' के संवाद जहाँ पात्रों के वैदुष्य एवं उनकी वाक्-कुशलता से पाठकों को लुभाए रखते हैं, वहीं 'सबहिं नचावत राम गोसाईं' एवं 'अपने खिलौने' के वार्तालापों से कई बार पाठक हँसते-हँसते लोटपोट हो जाता है अथवा मन ही मन मुस्कराने के लिए विवश हो जाता है ।'अपने खिलौने' का एक ऐसा ही संवाद द्रष्टव्य है -

टिकट चेकर ने पूछा-'टिकट दिखाओ ।'

जख्मी ने टिकट चेकर को कोई उत्तर नहीं दिया ।

टिकट चेकर ने जख्मी को हिलाया-डुलाया ; लेकिन जख्मी ने मानो उठने से इन्कार कर दिया हो । अब उसने झल्लाकर उनकी चादर जबर्दस्ती खोली--'टिकट ।'

जख्मी ने आँखें मलते हुए थोड़ी देर तक टिकट चेकर को देखा--'तुम कौन हो,और क्या चाहते हो ?'

'टिकट दिखाओ ।' चेकर ने कहा ।

'कैसा टिकट ?' जख्मी ने पूछा

'रेल का टिकट--- समझे । जो सफर कर रहे हो उसका टिकट ।'-- चेकर ने कहा ।

जख्मी ने कहा---'अहाहा । तो हुजूर रेलवई के इंसपेक्टर साहेब हैं? सलाम करता हूँ । अर्ज किया है --

टिकट कटा था, मगर हमने कर दिया वापस ।

अभी तो आया है, सेहरा में तेरा दीवाना ।।

टिकट चेकर ने आँखें तरेरकर कहा--' तुम साँई जी है, गाना गाकर हिन्दुस्तान का सफर मुफ़्त में करना चाहता है, लेकिन हम हैं धमधड़े । वर्धा से बम्बई का किराया

निकालो ।" यह कहकर उसने अपनी रसीद की कापी निकाली ।

जख्मी को अब फिर नीचे उतरना पड़ा । उसने कहा--" हुजूर लुट गया हूँ, मिट गया हूँ, बरबाद हो गया हूँ। ---रहम खाइए, पास में पैसा होता, तो टिकट न ले लिया होता । अर्ज किया है --

जुनूँ में गुम हूँ मैं, हैराँ और परीशाँ हूँ ।
मैं बन गया हूँ यहाँ अपना एक अफसाना ।।"

धमधड़ बोला--" ए साँई--- ये गाने -वाने से काम नहीं चलेगा, पैसा निकालो, नहीं तो जेल जाना पड़ेगा । समझता है तुम ? आ गया गजल-वजल याद करके, दुनिया को ठगता फिरता है ।"

जख्मी को कहना पड़ा---"हुजूर क्या जनसंघी हैं ?--- मैं हिन्दू हूँ,काश्मीरा बिरहमन, मैं साँई नहीं हूँ । ज़रा ठीक तौर से इंसान को पहचानने की कोशिश कीजिए ।"

"ए तुम हमें सिखाता है । हमारे पास बखत नहीं है, पैसा निकालता है कि नहीं ?

जख्मी को अब क्रोध आ गया---" पैसा किस मरदूद के पास है । पैसा होता तो बिला टिकट सफर करता ? कह तो दिया कि दुनिया का सताया हुआ हूँ ।"[1]

रेल में सफर करते एक बिना टिकट के यात्री और टिकट चेकर का संवाद स्वयं में कम रोचक नहीं है, जख्मी द्वारा शेर सुना-सुनाकर टिकट चेकर को फुसलाना और बातें बनाना पाठक को हँसाये बगैर नहीं रहता । यदि जख्मी को जबर्दस्ती गाड़ी से उतार दिये जाने, और पुन: अधिक रुपये न होने के कारण बिना टिकट गाड़ी में चढ़ने का पूरा प्रसंग ठीक से पाठक को मालूम हो तो इस वार्तालाप में और अधिक आनन्द आता है । ऐसे अनेक वार्तालाप 'सबहिं नचावत राम गोसाईं' और 'अपने खिलौने' में मिल जाते हैं,वर्मा जी के अन्य उपन्यासों में भी रोचकता का गुण प्रचुर मात्रा में दृष्टिगत होता है ।

संक्षिप्तता :- कथोपकथन की संक्षिप्तता के सम्बंध में एक आलोचक का मंतव्य है -कथोपकथन का लाघव कहानी और नाटक में प्रभावान्विति की दृष्टि से अधिक उपादेय होता है । उपन्यास में लाघव अनिवार्य नहीं है, क्योंकि उपन्यास का क्षेत्र व्यापक होता है और उपन्यासकार को संवाद के माध्यम से पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं को प्रकाशित करने का

1- अपने खिलौने- पृ0 184-185

अवसर अधिक प्राप्त होता है । उपन्यास का पाठक किंचित विस्तार को सहन कर सकता है । तथापि संवाद का लाघव स्पृहणीय होता है, वह रचना की रोचकता को बढ़ाता है और उसमें एक प्रकार की सांकेतिकता भी होती है जो रचना की प्रभविष्णुता में सहायक होती है ।"[1] वर्मा जी के उपन्यासों में अत्यधिक संक्षिप्तता तो दृष्टिगत नहीं होती, तथापि अपनी बात को पूर्णरूपेण स्पष्ट कर देने के अतिरिक्त उनके पात्रों के वार्तालाप में अनावश्यक विस्तार की प्रवृत्ति भी नहीं दिखती । विषय एवं अवसर के अनुकूल पात्रों के संवाद संक्षिप्त एवं दीर्घ होते रहे हैं । जैसा कि पहले कहा जा चुका है 'सामर्थ्य और सीमा', 'सीधी सच्ची बातें' तथा 'प्रश्न और मरीचिका' के राजनीतिक प्रश्नों एवं दार्शनिक विषयों से सम्बंधित वाद-विवाद प्राय: लम्बे-लम्बे हैं, अन्य उपन्यासों में भी गंभीर विषयों को लेकर किए गये तर्क-वितर्क दीर्घ ही हैं तथापि उनमें रोचकता का अभाव कम ही मिलता है, किन्तु सामान्य बातचीत में प्राय: संक्षिप्त एवं पैने कथोपकथन का ही अवलम्ब वर्मा जी ने ग्रहण किया है । गंभीर चिंतन-मनन के अवसरों को छोड़कर वर्मा जी के वाक्निपुण एवं हाजिरजवाब पात्रों को अपनी बात को प्रभावशाली ढंग से कहने के लिए लम्बे चौड़े कथनों की आवश्यकता नहीं पड़ती । वह कम से कम शब्दों में दूसरे पक्ष की जिज्ञासा शांत कर सकने में समर्थ होते हैं । पात्रों के विषयानुकूल संवाद में ऐसी स्पष्टता, त्वरा एवं गतिशीलता रहती है कि वह पाठक को उपन्यास के पृष्ठों के साथ बहाये लिए जाती है । विषयांतर न होने के कारण कुछ लम्बे संवादों में भी पाठक निरंतर रसमग्न बना रहता है । चित्रलेखा और श्वेतांक का एक वार्तालाप द्रष्टव्य है -

"तुम ब्रह्मचारी रहे हो, और तुम्हारे गुरु ने तुमसे मदिरा पीने का निषेध किया होगा । इसका कारण मैं जानना चाहती हूँ ।" श्वेतांक ने धीरे से उत्तर दिया--"देवि ! संयम जीवन का एक आवश्यक अंग है और मदिरा और संयम में विरोध है ।"

"और संयम का लक्ष्य क्या है ?"

"सुख और शान्ति ।"

चित्रलेखा ने मदिरा के पात्र को अपने अधरों से लगाते हुए पूछा--"और जीवन का लक्ष्य ?"

चित्रलेखा की आँखें मादकता से कुछ-कुछ लाल होने लगी थीं, श्वेतांक ने चित्रलेखा के स्वर में एक प्रकार के संगीत का अनुभव किया, उसके वार्तालाप में कविता का । उसने उत्तर दिया --

---

1- हिन्दी उपन्यास कला- डॉ० रामलखन शुक्ल, पृ० 37

"जीवन का लक्ष्य ? सुख और शान्ति ।"

"यहीं पर तुम भूलते हो नवयुवक ।" -- चित्रलेखा सम्हल कर बैठ गयी -- "सुख तृप्ति है और शान्ति अकर्मण्यता ; पर जीवन अविकल कर्म है, न बुझनेवाली पिपासा है । जीवन हलचल है, परिवर्तन है ; और हलचल तथा परिवर्तन में सुख और शान्ति का कोई स्थान नहीं ।"[1] - इतना कहकर उसने मदिरा का पात्र श्वेतांक के होठों पर लगा दिया ।

उपर्युक्त संवाद का प्रारंभिक अंश संक्षिप्त है, किन्तु अंत में विषय की स्पष्टता के लिए लम्बा कर दिया गया है तथापि चर्चित विषय से सम्बंधित होने के कारण तथा सरस एवं रुचिकर शैली के कारण उसमें रोचकता का पूर्ण निर्वाह हुआ है । पात्रों की सामान्य बातचीत में तो लाघव और सरसता का समन्वय पाठक को पूर्णरूपेण आकर्षित कर लेता है -

"मिस्टर अजितकुमार । मैं आपसे पूछ सकता हूँ कि आपके पिता क्या करते हैं ?"

अजितकुमार ने हँसते हुए उत्तर दिया -- "मेरे पिता इस समय स्वर्ग-लोक में अप्सराओं के साथ विहार कर रहे होंगे ।"

इस उत्तर से रमेश सहम-सा गया । अजितकुमार वास्तव में विचित्र मनुष्य था ; विचित्र ही नहीं, किसी अंश में अधार्मिक । उसे अजितकुमार की अपने पिता के प्रति अश्रद्धा-पूर्वक बात बुरी लगी, फिर भी उसने कहा - "फिर आपको कौन सपोर्ट कर रहा है ?"

"कोई नहीं, मैं खुद अपने को सपोर्ट कर रहा हूँ ।"

"तो आपके जमीन्दारी होगी ।"

"नहीं ।"

"तो फिर आप किस प्रकार अपने को सपोर्ट करते हैं ?" अजितकुमार इस बार जोर से हँस पड़ा --- "भाई, तीन वर्ष यदि मैं अधिक बड़ा होता , तो अपने को ही नहीं, वरन् सैकड़ों, बल्कि हजारों को मैं सपोर्ट कर सकता ।"

अजितकुमार जो कुछ कह रहा था, वह रमेश के लिए एक पहेली थी -- "मैं नहीं समझा ।"

"तो फिर क्यों तुम इंटरमीडिएट में फर्स्ट कैसे आ गए ? इतनी साधारण-सी बात भी तुम नहीं समझ पा रहे हो ? सुनो, मेरे पिता--- राज्य के राजा थे। उनकी मृत्यु के बाद मेरे बड़े भाई जो मुझसे दो वर्ष बड़े हैं, राजा हुए । मुझे केवल गुजारा मिलता है ।"[2]

1- चित्रलेखा- पृ० 24

2- तीन वर्ष- पृ० 17-18

उच्च बौद्धिक स्तरीय पात्रों की संक्षिप्त वार्ता में जहाँ गूढ़ता एवं लाक्षणिकता मिलती है वहीं सामान्य पात्रों की बातचीत में ऋजुता एवं सरलता दृष्टिगत होती है। रामेश्वर और चमेली अल्पशिक्षित हैं, चमेली, गाँव की भोली-भाली स्त्री, एक लम्पट के साथ बम्बई पहुँच जाती है और वहाँ उसकी भेंट एक प्रौढ़ युवक रामेश्वर से होती है जो कम पढ़ा लिखा होकर भी अनुभवी है। दोनों का वार्तालाप सुनिए -

"अरे बाप रे! कैसी बरसात होती है इस बम्बई में। अच्छा देख, मुझे पेढ़ी पर जाना है, जल्दी से नहाकर दो रोटियाँ सेंक लूँ।"

"मैं सेंके देती हूँ। लेकिन---" चमेली कहते-कहते रुक गई।

"लेकिन क्या? मैं ठाकुर हूँ। तू कौन जात है?" रामेश्वर हँस पड़ा।

"पहले बनिया थी, अग्रवाल। अब कोई जात नहीं।"

"हूँ। तो तू समझती है कि मैं तेरे हाथ का पकाया खाऊँगा नहीं।" रामेश्वर ने सर हिलाते हुए कहा, "देख बम्बई में खाने-पीने के मामले में सिर्फ एक जात होती है-- वह है आदमी की। यहाँ मुसलमान के होटल में चाय पीनी पड़ती है। फिक्र न कर।"

खाना खाते हुए रामेश्वर ने कहा, "कल रात तेरी बाबत बहुत सोचा। अजीब चक्कर में पड़ गया हूँ। मेरा ऐसा ख्याल है कि तू घर वापस नहीं जा सकती-- है न ठीक?"

चमेली ने सिर हिला दिया।

"और अपने मायके?"

"वहाँ भी नहीं।"

"वहाँ भी नहीं। -- मैं जानता था। तुझे कोई घर में वापस न लेगा, तू औरत है न! कुल कलंकित हो जायगा। मर्द सब कुछ कर सकता है और वह कुलीन बना रह सकता है। दुनिया मर्दों की है न! -- हैरे की!" और रामेश्वर हँसने लगा।[1]

संक्षिप्त कथोपकथन की दृष्टि से 'चित्रलेखा', 'तीन वर्ष', 'अपने खिलौने' 'आखिरी दाँव', 'भूले बिसरे चित्र' एवं 'सबहिं नचावत राम गोसाईं' विशेष उल्लेखनीय है, किन्तु जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि इनमें भी गूढ़ विषयों पर होनेवाला वाद-विवाद लम्बा एवं तर्कपूर्ण ही है। डॉ० मक्खनलाल शर्मा का कथन है कि "भूले बिसरे चित्र तथा 'सती मैया का चौरा' में कम से कम बीसियों ऐसे स्थल मिलेंगे जहाँ 4-4, 6-6 पृष्ठ के स्वगत कथन या लम्बे कथन मिल जायेंगे। सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उपन्यासकार इन लम्बे-लम्बे भाषणों को नियोजित करते समय यह ध्यान भी नहीं रखते कि इन कथनों को यहाँ प्रस्तुत

1- अपने खिलौने- पृ० 25-26

करना उचित भी है या नहीं ?"[1] विद्वान लेखक का उक्त कथन भ्रांतिपूर्ण प्रतीत होता है, 'भूले बिसरे चित्र' तो क्या, वर्मा जी के किसी उपन्यास में इतने लम्बे कथन नहीं मिलते। स्वगत कथन तो वर्मा जी के उपन्यासों में गिने-चुने स्थलों पर ही मिलते हैं, वह भी इतने लम्बे कहीं भी नहीं हुए हैं। जहाँ तक 'भूले बिसरे चित्र' का प्रश्न है, इस उपन्यास का लम्बा-से लम्बा कथन भी १ पृष्ठ से बड़ा कहीं भी नहीं है। केवल एक स्थल पर लाल रिपुदमनसिंह अपनी पत्नी से सम्बंधित कहानी सुनाता है, वह कहानी 10 पृष्ठ तक चलती है[2] लेकिन वह कहानी स्वयं में इतनी रोमांचक एवं सकारण है कि उसके सम्बंध में यह कदापि नहीं कहा जा सकता कि वह भाषण है और उसे रखते समय उपन्यासकार ने अवसर का विचार नहीं किया है।

निष्कर्ष :- वर्मा जी के उपन्यासों के कथोपकथन के सम्पूर्ण विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि वर्मा जी ने अपने उपन्यासों में कथोपकथन की अवतारणा बहुत सोच-समझ कर की है। यों तो उन्होंने कथोपकथन की आयोजना पूर्वोक्त पाँचों उद्देश्यों से की है तथापि वर्मा जी ने पात्रों के चरित्रांकन, कथा के अग्रसरण एवं विचारों के प्रतिपादन के लिए संवाद का अवलम्ब अधिक लिया है। इनके संवाद कहीं पात्रों की चरित्रगत विशेषताओं का उद्घाटन करते हैं, तो कहीं कथा के नवीन मोड़ों को प्रकाशित करते जाते हैं और कहीं उपन्यासकार ने अपने व्यक्तिगत विचारों की अभिव्यक्ति पात्रों के संवादों के माध्यम से करवायी है। वर्मा जी के उपन्यासों में कुछ स्थल तो ऐसे भी मिलते हैं जहाँ इन तीनों उद्देश्यों का समन्वित निदर्शन हो गया है।

वर्मा जी द्वारा नियोजित संवादों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उनमें पात्रों की निजता बनी रहती है, पात्रों की शिक्षा-संस्कृति, वर्ग तथा स्वभाव के अनुसार उनके संवाद का अपना विशिष्ट लहजा या य ढंग होता है, वे अपने स्वभाव के अनुकूल थोड़े से शब्दों में, सरल ढंग से बोलते हैं ; या बोलने और वाद-विवाद करने के लिए तत्पर रहते हैं। पात्रों की भाषा-शैली में उनकी स्थानीय विशेषताओं की झलक भी मिल जाती है, विशेष-रूप से ग्रामीण या निम्नवर्गीय पात्रों की लोक भाषा का माधुर्य पाठकों को मोह लेता है। इसके अतिरिक्त पात्रों के बौद्धिक स्तर के अनुसार उनके संवादों में हास्य-व्यंग्य विनोद, प्रत्युत्पन्नमतित्व, वाग्विदग्धता, पैनापन, लाक्षणिकता, ऋजुता एवं सरलता का पृथक-पृथक

1- हिन्दी उपन्यास : सिद्धान्त और समीक्षा, डॉ० मक्खनलाल शर्मा, पृ० 72

2- भूले बिसरे चित्र- पृ० 297 से 307

समावेश हुआ है । विशेष भावात्मक स्थिति में पात्रों की भाषा में ओज, माधुर्य एवं प्रसाद गुणों का सन्निवेश करके उपन्यासकार ने उसमें भावानुकूलता भी प्रदान की है । इसीलिए इन संवादों की स्वाभाविकता को क्षति नहीं पहुँची है ।

वर्मा जी के कुछ उपन्यासों के लम्बे वार्तालापों के अतिरिक्त संवादों में प्राय: नाटकीयता, चित्रात्मकता एवं प्रभावोत्पादकता के गुण मिल जाते हैं क्योंकि उनमें रोचकता, सरसता एवं संक्षिप्तता के कारण सम्पूर्ण दृश्य को साकार कर देने की क्षमता होती है । ऐसे संवादों के साथ उपन्यासकार की सार्थक एवं संक्षिप्त टिप्पणी अधिकांशत: चित्र को पूर्णता प्रदान करती हैं, किन्तु कहीं- कहीं उपन्यासकार की अनावश्यक उपस्थिति पाठक और वक्ता के बीच व्यवधान खड़ा कर देती है । तथापि पात्रों के कथन स्वयं में इतने सार्थक, प्रवाहपूर्ण एवं गतिशील होते हैं कि वह उपन्यासकार की उपस्थिति से कुण्ठित एवं प्रभावहीन नहीं होते ।

अंतत: कहा जा सकता है कि वर्मा जी के उपन्यासों के संवादों में मनोवैज्ञानिक उपन्यासों से पृथक् उपन्यास -सम्राट प्रेमचन्द जी के संवादों की विशेषताओं का संशोधित, परिष्कृत एवं विकसित रूप देखने को मिलता है, जिससे इनके उपन्यासों के गौरव एवं लोक-प्रियता में अभिवृद्धि हुई है ।

00000000
000000
0000
00
0